प्रकाशक
मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
इलाहाबाद।

मूल्य
चार रु

१९६१

मुद्रक
जीतेन्द्रनाथ घोष
माया प्रेस प्राइवेट लिमिटेड
इलाहाबाद।

प्रस्तावना

'प्रस्तुत पुस्तक 'इस्लाम के सूफी साधक' निकलसन कृत 'दी मिस्टिक्स आव इस्लाम' का हिन्दी रूपान्तर है। इस पुस्तक को विद्वान लेखक ने अविराम गति से बीस वर्षों में अथक परिश्रम द्वारा तयार किया था। इसका एक प्रमाण यह है कि विदेशी लेखक ने जो कुछ कहा है उसको प्रामाणिकता के आधार पर। उन प्रमाणों को ढूँढ कर जुटाने और उनका यथास्थान उपयोग करने में उसे कितना सजग अध्यवसाय करना पड़ा होगा इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इस पुस्तक के अध्येता को यह अनुभव होते देर न लगेगी कि इसका मूल्य और उपयोग जो प्रारम्भ में रहा होगा वही आज भी है। इस विषय के जिज्ञासु अथवा अध्येता के लिए यह सम्भव नहीं कि सूफीमत का अध्ययन करते समय इस पुस्तक की उपेक्षा कर जाय वैसी दशा में उसका ज्ञान सीमित अथवा अधूरा ही समझा जायेगा। यह पुस्तक परिचयात्मक मात्र नहीं है अपितु स्पष्ट एवं सुबोध शैली विषय-बोध कराने वाली है। इसके द्वारा सैद्धान्तिक बातों को हृदयंगम करना सुगम हो जाता है। जो पाठक अरबी तथा फ़ारसी के विद्वान नहीं हैं अथवा जिन्हें इस विषय के मूल ग्रंथ सुलभ नहीं हैं उनके लिए यह पुस्तक अद्वितीय है।

इस अनुवाद के विषय में सहृदय पाठक ही अपना निर्णय लेंगे। मैं अपनी बात जानता हूँ कि यह श्रमसाध्य कार्य किसी अदृष्ट प्रेरणा द्वारा ही संभव हो सका। पुस्तक में जो उद्धरण आये हैं उनमें से कई इस अनुवाद ग्रंथ में मूल रूप में मिलेंगे। इन्हें जुटाने और उनका यथास्थान उपयोग करने का सम्पूर्ण श्रेय भाई श्रीकृष्ण दास जी को है। मूल उद्धरणों को प्राप्त करने में डा० एजाज हुसेन साहब तथा हाफिज गुलाम मुर्तजा साहब से भी बड़ी सहायता मिली। एतदर्थ इन गुरुजनों को धन्यवाद।

अन्त में मैं उन सभी लोगों के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ जो जाने-अनजाने इस अवसर को लाने के निमित्त बने।

—नर्मदेश्वर चतुर्वेदी

९८।४ ए पुरुषोत्तमनगर
इलाहाबाद।

उन प्रबुद्ध प्राणियों को जिनके लिए
स्नेह-सहानुभूति
शिष्टाचार के अंग मात्र हैं।

भूमिका

सूफीमत विदेशी तथा विजातीय वातावरण में प्रादुर्भूत होकर भी अपनी विशेषताओं के कारण अन्यान्य देशों के धार्मिक जीवन का विशिष्ट अंग बन सका। भारतवर्ष को भी अपनी उदार एवं उर्वर प्रकृति के कारण उसे अपनाने में कोई हिचक न हुई। यह एक विलक्षण विरोधाभास है कि जिस जाति का सत्ताधारी वर्ग शस्त्रबल द्वारा जय-यात्रा का अभियान कर चुका था, उसी जाति का एक समुदाय आक्रमण के संहार पीड़ित और संतप्त जनता के घरों में प्रेम का संदेश पहुँचा कर उन्हें सान्त्वना द्वारा वशीभूत कर रहा था। उसकी सफलता का रहस्य इसी में है।

भारतवासियों को सूफियों के उपदेश एकदम नये नहीं लगे। इससे मिलते जुलते सिद्धान्तों तथा मतवादों का प्रचार पहले से ही यहाँ होता आ रहा था। अतएव उन्हें हृदयंगम करने में इन्हें कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' अथवा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का चिन्तन करने वालों को प्रेम का मार्ग अपरिचित नहीं जान पड़ा। इसी कारण परस्पर भाईचारे का व्यवहार होने अधिक देर नहीं लगी। हिन्दुओं द्वारा भी पीर पैगम्बर तक की पूजा होने लगी।

विग्रहों से आत्मरक्षा के निमित्त निरन्तर संघर्ष करने वाले भारतवासियों को यह समझने अधिक देर नहीं लगी थी कि केवल सैन्यबल पर निर्भर नहीं किया जा सकता। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए वे आत्मबल की ओर झुके और उन्होंने अध्यात्म का पल्ला पकड़ा। इसने मन पर सुदूरवर्ती देशों तक में सद्भाव स्थापित करने में उन्हें जो सफलता मिली वह उनके लिए मूल्यवान सिद्ध हुई। इस सफलता का एक

सांस्कृतिक महत्व भी था जो किसी भी राजनीतिक विजय से कदापि कम न था। फलस्वरूप अपनी व्यापक एवं उदार प्रवृत्ति के कारण किसी को भी आत्मसात् कर लेना उनके लिए अधिक सहज था। इस अध्यात्म जीवन एवं दर्शन को भी रस मिलता गया जिस कारण नयी शक्ति तथा प्रगतिशील चेतना का अभ्युदय सम्भव हुआ।

सूफियों के प्रादुर्भाव तथा प्रसार का युग ऐसा था जब कि अन्धविश्वास के कारण आत्मा और परमात्मा के बीच व्यवधान उपस्थित हो चुका था। कर्मकाण्डों और चमत्कारों के बीच जनता त्रस्त तथा हत प्रभ थी। मानवता ने नयी चेतना-आत्मज्ञान-का सन्देश एवं अवसर पर देकर जन मानस को आन्दोलित कर दिया और मानव मन में नयी आस्था तथा नये विश्वास को जाग्रत कर दिया। इनके सन्देश-वाहकों ने यातायात की बाधाओं और कठिनाइयों की उपेक्षा कर पास-पड़ोस तथा दूरवर्ती स्थलों तक में अपने अपने सिद्धान्तों और मतवादों के प्रचार किये।

दूसरे स्थलों के सम्पर्क में आने का एक निश्चित परिणाम यह भी हुआ कि वे उनके प्रति अधिकाधिक उदार तथा सहिष्णु बन गए। अपनी बातें सुनाते-सुनाते वे दूसरों की सुनने में भी अभ्यस्त हो गए। वे दूसरों के प्रति अनुदार न रह गये। इस प्रवृत्ति के कारण एक ओर जहाँ चीन तथा दूरवर्ती दक्षिण-पूर्वी भू भाग में जा पहुँचे, वहाँ दूसरी ओर इस्लाम प्रधान मध्यपूर्वी प्रदेशों के सम्पर्क में भी आये। इस प्रकार भारतवर्ष विभिन्न संस्कृतियों का सङ्गम-स्थल बन गया। जिससे एक मिली जुली संस्कृति का विकास हुआ। उन दिनों भारत के पूर्वी भाग में मुस्लिम शासकों, कवियों और धर्मोपदेशकों का जोर था जिसका गहरा प्रभाव भारत पर भी पड़ा। ब्रिटिश समुदाय व्यापारी और अपनी प्रशासन की ओर उन्मुख हुआ तथा यहाँ सन् १८३४ ईसवी तक उसकी हुकूमत की सत्ता बनी रही।

इस्लाम धर्म के अनुयायियों की यह एक विशेषता रहती आई है कि वे चाहे संसार के जिस किसी भू-खण्ड में रहें परस्पर एक दूसरे को सदा निकट समझते आये हैं। इस सम्बन्ध को वे किसी न किसी रूप में बनाये रखने के लिए सदा सजग तथा सचेष्ट भी रहते हैं। यही कारण है कि दिल्ली अथवा लखनऊ के एक मुसलमान को अरब, ईरान अथवा मिस्र के किसी मुसलमान से आत्मीयता स्थापित करने में कभी कोई कठिनाई या असुविधा नहीं होती। वह उस स्थिति एक सहधर्मी को अपने विधर्मी पड़ोसी से कहीं अधिक निकट का पाता है। यह विशेषता केवल किसी एक देश की अपनी परिस्थितियों के कारण नहीं है, अपितु सर्वसाधारण है। वास्तव में उनके धार्मिक संस्कार अत्यन्त प्रबल हैं। परन्तु इस प्रवृत्ति के कारण किसी अन्य देशवासी अथवा धर्मावलम्बी से सम्बन्ध स्थापित करने में उन्हें कभी कोई बाधा या अड़चन नहीं अनुभव हुई।

यह सब इसलिए ध्यान में रखना आवश्यक है कि सूफीमत जिन लोगों के बीच उद्भूत हुआ उनकी सीमाओं अथवा विशेषताओं से अवगत रहना विषय-बोध कराने में सहायक हो सकता है। कहा जाता है कि हज़रत मुहम्मद के उपदेशों के दो पक्ष थे। एक वह जो कुरान शरीफ में सन्निविष्ट है और दूसरा वह जो उनके हृदय में स्थित रहा है। कुरान 'इल्म सफ़ीना' अर्थात् बुद्धि पक्ष का है और दूसरा 'इल्म सीना' अर्थात् हृदय पक्ष का है। कुरान की शिक्षा-दीक्षा उलमाओं द्वारा सुलभ है और दूसरा विरक्त सूफियों के रहस्यवादी उपदेशों द्वारा उपलब्ध है। सूफीमत अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में सांसारिक सुखों से विरति और अल्लाह तथा उनके दण्डों से भयभीत रहने के लिए प्रसिद्ध रहा है। उन दिनों से ही इस सत्य तथा मौन का मार्ग समझा जाने लगा था। हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के तीन शताब्दी बाद वैराग्य और आत्मदमन सूफीमत की विशेषता बन गए। शेख अबू हाशिम कूफी (मृत्युकाल ७६७ ईसवी) जामी के अनुसार सर्व प्रथम सूफी कहलाकर प्रसिद्ध हुए।

सूफीमत—खुदापरस्ती के लिए काम करना, खुदा के नाम पर सब कुछ त्याग देना, सांसारिक वैभव विलास तथा बुरे कामों से विमुख रहना, सुख को तिलांजलि देना, मानवी आकांक्षाओं के सामान्य साधन धन तथा सत्ता से दूर रहना और सामाजिकता को छोड़कर खुदापरस्ती में निरत रहना, सूफीमत के ये मौलिक सिद्धान्त थे जिनका प्राचीन काल में चलन था। उन दिनों यह एक प्रकार के विरक्त संन्यासियों का समुदाय मात्र था।

इस विरक्ति भावना के पीछे और जो भी कारण रहे हों एक प्रत्यक्ष कारण यह भी है कि प्रथम चार खलीफाओं के शासन काल की स्थिति अत्यन्त दुष्कर एवं भयावह थी। उमय्यद खलीफाओं के आतंककारी शासन से ऊब कर कई शुद्ध प्रकृति के मुसलमान आत्मा की शान्ति के लिए सांसारिक पचड़े से हटकर एकान्त जीवन व्यतीत करना पसन्द करने लगे।

ऐसे संन्यासियों में बसरा के हसन (सन् ७२८ ईसवी) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हिजरी सन् की प्रथम शताब्दी के अन्त में इन एकान्तवासियों में से एक ऐसा समुदाय भी निकला जो एकान्त में बैठकर ध्यान और ध्यान के आगे इलहाम तथा हाल अथवा भावोन्माद की स्थिति तक पहुँच गया। ऐसी स्थिति में इन संन्यासियों द्वारा वैभव त्याग तथा दारिद्र्य स्वीकृति अथवा मरण को अपने आप में पर्याप्त नहीं समझा जाता था अपितु खुदापरस्ती के प्रति आत्मनिरपेक्ष भक्ति की अभिव्यक्ति मानी जाती थी। इस प्रकार प्रारम्भिक दिनों का त्याग व तप के भौतिक रूप में अब परिवर्तन आ गया।

परवर्ती कालीन संन्यासी सूफियों के लिए ईश्वर का प्रेम ध्येय मात्र न होकर दूसरी इच्छा मात्र का अभाव बन गया जिसकी तुलना ईसाई तथा भारतीय भक्तों से की जा सकती है। 'राबी' द्वारा और राबी द्वारा इसका सूत्रपात बन गया। ऐसे संन्यासी सूफियों में इब्राहीम अदहम (मृत्यु काल सन् ७८१ ईसवी) प्रमुख थे। सूफीमत धीरे धीरे रहस्यवाद

की ओर प्रवृत्त हुआ। इससे पहले यह कुरान की कुछ विशेष आयतों (८, १७) तथा परम्पराओं पर आश्रित था। हिज़री सन् की दूसरी शताब्दी से ये सूफी कहला कर प्रसिद्ध हुए।

सूफीमत खुदा व नूर के प्रति मुहब्बत का भाव लेकर चला है। प्रेम के प्रश्न पर ही पूर्व और पश्चिम का भेद समाप्त होता है। रहस्यवादी प्रवृत्ति का विकास आठवीं शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी के बीच संसार भर में विशेष रूप से हुआ है। भारतवासी कबीरादि हों अथवा ईरानी जलालुद्दीन रूमी अथवा यूरोप के अन्य ईसाई संत सभी के हृदयों में एक ही भावधारा प्रवाहित हो रही थी।

परिस्थिति—कहा जाता है कि मुहम्मद साहब की मृत्यु के सौ वर्ष पीछे तक इस्लाम में सन्यास और तपोनिष्ठ जीवन का अभाव था। परन्तु कुरान में पाप तथा फैसले के दिन के भय तथा आतंक के प्रसंग में जो चेतना फूँकी गई है वह कदाचित् उक्त भावना के उद्रेक का प्रथम उदाहरण है। यहूदी तथा ईसाई धर्म गुरुओं के बीच प्रचलित 'नफ्सकुशी' के प्रति मुहम्मद ने अपने अनुयायियों को सजग किया था। प्राचीन काल के मुसलमानों द्वारा सूफी 'अल-सहवा' तथा 'अल-तविउन' समझे जाते थे और परवर्ती काल में उन्हें सत्य तथा मोक्ष का साधक माना जाने लगा।

जिन दिनों सूफीमत का उद्भव हुआ उन दिनों मध्य एशिया में बौद्ध रत्न-कथाएँ तथा रस्म-रिवाज़ भी वहाँ प्रचलित थे। ऐसी दशा में इस पर उनका प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी था। कुछ लोग इसका भारतीय मूल वेदान्त में ढूँढने का आग्रह करते हैं, क्योंकि इसकी कुछ बातें भारतीय चिन्ताधारा से मिलती जुलती हैं। अतएव इसके अनुसार उनके मूल में कोई न कोई एक सूत्रता अवश्य होनी चाहिए। इसके समर्थन में एक तर्क नौशेरवाँ के समय छठीं शताब्दी में परस्पर हुए विचार विनिमय द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। परन्तु जहाँ तक पता है ईरान के धार्मिक तथा सामाजिक जीवन पर भारत का कोई विशेष प्रभाव नहीं

सूफीमत—खुदापरस्ती के लिए काम करना, खुदा के नाम पर सब कुछ त्याग देना, सांसारिक वैभव-विलास तथा बुरे कामों से विमुख रहना सुख को तिलांजलि देना, मानवी आकांक्षाओं के सामान्य साधन धन तथा सत्ता से दूर रहना और सामाजिकता को छोड़कर खुदापरस्ती में निरत रहना, सूफीमत के ये मौलिक सिद्धान्त थे जिनका प्राचीन काल में चलन था। उन दिनों यह एक प्रकार के विरक्त सन्यासियों का समुदाय मात्र था।

इस विरक्ति भावना के पीछे और जो भी कारण रहे हों, एक प्रधान कारण यह भी है कि प्रथम चार खलीफाओं के शासन काल की स्थिति अत्यन्त दुष्कर एवं भयावह थी। उमय्यद खलीफाओं के आतंककारी शासन से ऊब कर कई शुद्ध प्रकृति के मुसलमान आत्मा की शान्ति के लिए सांसारिक पचड़े से हटकर एकान्त जीवन व्यतीत करना पसन्द करने लगे।

ऐसे सन्यासियों में बसरा के हसन (सन् ७२८ ईसवी) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हिज़री सन् की प्रथम शताब्दी के अन्त में इन एकान्तवासियों में से एक ऐसा समुदाय भी निकला जो एकान्त में बैठकर ध्यान और ध्यान के आगे इलहाम तथा हाल अथवा भावावेश की स्थिति तक पहुँच गया। ऐसी स्थिति में इन संन्यासियों द्वारा सम्पत्ति त्याग तथा दारिद्र्य स्वीकृति अथवा ग्रहण को अपने आप में पर्याप्त नहीं समझा जाता था अपितु खुदापरस्ती के प्रति आत्मनिरपेक्ष भक्ति की अभिव्यक्ति मानी जाती थी। इस प्रकार प्रारम्भिक दिनों का त्याग के रूप के भौतिक अर्थ में पूर्ण परिवर्तन आ गया।

परवर्ती कालीन सन्यासी सूफियों के लिए दारिद्र्य का आदर्श बना भाव न होकर उनकी इच्छा मात्र का प्रसार बन गया जिसकी तुलना हमारे यहाँ भारतीय धर्मों से की जा सकती है। 'स्वामी दास और स्वामी भाव' इसका मुख्य रूप बन गया। ऐसे संन्यासी सूफियों में इब्राहीम अदहम (मृत्यु सन् ७८२ ईसवी) प्रमुख थे। सूफीमत धीरे धीरे रहस्यवाद

की ओर प्रवृत्त हुआ। इससे पहले वह कुरान की कुछ विशेष आयतों (८, १७) तथा परम्पराओं पर आश्रित था। हिज़री सन् की दूसरी शताब्दी से ये सूफी कहला कर प्रसिद्ध हुए।

सूफीमत खुदा के नूर के प्रति मुहब्बत का भाव लेकर चला है। प्रेम के प्रश्न पर ही पूर्व और पश्चिम का भेद समाप्त होता है। रहस्यवादी प्रवृत्ति का विकास आठवीं शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी के बीच संसार भर में विशेष रूप से हुआ है। भारतवासी कबीरादि हों अथवा ईरानी जलालुद्दीन रूमी अथवा यूरोप के अन्य ईसाई संत सभी के हृदयों में एक ही भावधारा प्रवाहित हो रही थी।

परिस्थिति—कहा जाता है कि मुहम्मद साहब की मृत्यु के सौ वर्ष बाद तक इस्लाम में सन्यास और तपोनिष्ठ जीवन का अभाव था। परन्तु कुरान में पाप तथा फैसले के दिन के भय तथा आतंक के प्रसंग में जो चेतना फूँकी गई है वह कदाचित् उक्त भावना के उद्रेक का प्रथम उदाहरण है। यहूदी तथा ईसाई धर्म गुरुओं के बीच प्रचलित 'नफ्समकुशी' के प्रति मुहम्मद ने अपने अनुयायियों को सजग किया था। प्राचीन काल में मुसलमानों द्वारा सूफी 'अल-सहबा' तथा 'अल-नबिउन' समझे जाते थे और परवर्ती काल में उन्हें सत्य तथा मोक्ष का साधक माना जाने लगा।

जिन दिनों सूफीमत का उद्भव हुआ उन दिनों मध्य एशिया में बौद्ध दन्त-कथाएँ तथा रमनेरियाज़ भी वहाँ प्रचलित थे। ऐसी दशा में इस पर उनका प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी था। कुछ लोग इसका भारतीय मूल वेदान्त में ढूँढ़ने का आग्रह करते हैं, क्योंकि इसकी कुछ बातें भारतीय चिन्ताधारा से मिलती जुलती हैं। अतएव इनके अनुसार उनके मूल में कोई न कोई एक सूत्रता अवश्य होनी चाहिए। इसके समर्थन में एक तर्क नौशरवाँ के समय छठीं शताब्दी में परस्पर हुए विचार विनिमय द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। परन्तु जहाँ तक पता है ईरान के धार्मिक तथा सामाजिक जीवन पर भारत का कोई विशेष प्रभाव नहीं

पड़ा था। यह यहाँ पहुँचा मर था, प्रभाव न डाल सका था। अल बरूनी ने पूर्व भारत के विषय में ईरान वाले शायद ही कुछ अधिक जानते रहे हों। इस समय तक सूफीमत अपनी प्रारम्भिक अवस्था पार कर चुका था। इसलिए उसके वेदान्त द्वारा प्रभावित होने का तर्क निर्मूल तथा निराधार प्रतीत होता है। यह यदि सच हो भी सकता है तो किसी सीमा तक भारतीय सूफीमत के सम्बन्ध में। इसके विपरीत सूफीमत ने मध्य कालीन भक्ति आन्दोलन को बहुत कुछ प्रेरणा प्रदान की है।

कुछ लोग सूफीमत का सम्बन्ध सासानियों के समय से जोड़ना चाहते हैं। परन्तु इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। मुहीउद्दीन इब्न अरबी और इब्न उलफरीद जैसे कुछ अरबी सूफी भी रहे हैं जिन्होंने ईरान के हाफ़िज़ और जामी जैसे सूफियों को बहुत कुछ प्रभावित किया है। निकलसन भी ब्राउन की भांति इसको अन्य मानव मस्तिष्क की स्वाभाविक इच्छा की अभिव्यक्ति मानते हैं जो सभी देशों में व्याप्त है।

मुसलमान विचारक ईसा की नवीं शताब्दी से ही नव अफलातूनी विचारधारा से परिचित हो चले थे और वे अरस्तू की कृतियों का ध्यान में रख कर पठन करते थे। इसलिए संभव है प्रारम्भिक अवस्था में सूफीमत को आत्मा और परमात्मा के मिलन की मानवीय इच्छा से ही कम स्वरूप अस्तित्व में आने की प्रेरणा मिली हो, किन्तु आगे चल कर इसकी अपनी एक स्वतन्त्र पद्धति बन गई जिसके मूल में नव अफलातूनी तथा अन्यान्य विचारधाराओं का भी योगदान रहा हो। अरब वालों ने जिन दिनों सीरिया पर आक्रमण किया था उन दिनों सीरिया वालों द्वारा प्लाटिनस के विचारों का अध्ययन किया जा रहा था।

[illegible] ईसा की [illegible] शताब्दी के अन्त में सूफीमत में नये [illegible] हो। [illegible] तथा [illegible] का स्थान [illegible] और [illegible] विचारधारा [illegible] करने लगी। उन दिनों में [illegible] सूफी का नाम लिया जाता है जिसका [illegible] अनुसार [illegible] है। इन दिनों इस्लाम पर

इस्लामिक संस्कृति का विशेष प्रभाव था, जबकि यूनानी विचारकों की कृतियों का अनुवाद, अनुशीलन तथा अध्ययन किया जा रहा था। फलस्वरूप सूफ़ीमत पर इस्लाम से बाहरी तत्त्वों का भी प्रभाव पड़ने लगा था। इसमें बौद्ध, मायामार्ग तथा नास्तिक मत का प्रवेश किलान को श्रेय धुननून मिश्री को दिया जाता है। बायजीद के अनुयायी सूफ़ियों में पृथक्करण की प्रवृत्ति जाग्रत हुई और वे गरममशरबी सिद्धान्त के पोषक बन गए। बायज़ीद के गुरु सिन्ध के अबू अली थे। सनातनी सूफ़ी इन्हें काफ़िर कहने लगे थे। ये अपने को खुदा से अभिन्न मानने थे और अपनी पूजा करने का सुझाव देते थे। इस सम्प्रदाय में सर्वाधिक प्रसिद्ध हुसैन मंसूर हैं जिन्हें हल्लाज कहने की परम्परा है। इसमें इरानी था और मंसूर उसके पिता का नाम था। हल्लाज को कुछ लोगों ने प्रच्छन्न ईसाई बतलाया है, क्योंकि उसने इसी का अपने हक़ अर्थात् ईश्वर का सच्चा प्रतिनिधि कहा है। उसके अनुसार मुहम्मद नबियों में श्रेष्ठ हैं, जबकि ईसा सतों में सर्वोच्च हैं। उसका 'अनलहक़' का सिद्धान्त विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भारतीय विचारधारा में देखी तथा मानवी प्रकृति को व्यक्त करने के लिए जो शब्द प्रयुक्त हुए हैं वे ठीक वही हैं जो हल्लाज द्वारा प्रयुक्त 'लाहूत' और 'नासूत' के भाव द्वारा प्रकट होते हैं।

पुनरावर्तन—परन्तु इमाम अलग़ज़ाली के समय तक सूफ़ीमत की स्थिति पुनः सुदृढ़ हो गई और इस्लाम में इसका एक निश्चित स्थान बन गया। ग़ज़ाली को 'हुज्जतुल इस्लाम' अर्थात् 'इस्लाम रक्षक' का खिताब मिला था। उसने अनुभव किया कि सूफ़ी और उसका अमल का मत शाश्वत है। उसने अनुभूति पर अधिक बल दिया और दर्शन तथा अनुमान को गौण समझा। इस प्रकार उसकी प्रणाली तत्त्वदर्शक बन गई और वह अपने युग के बौद्धिक स्तर का प्रतीक बन गया। उसने सनातनी इस्लाम के अनुरूप सूफ़ीमत की व्याख्या की। आचार-सम्बन्धी कई बातों को लेकर ग़ज़ाली की इस्लाम मत से अधिक समानता है। उसमें

धार्मिक तथा आध्यात्मिक पक्ष प्रसन्न है। यह सब होते हुए भी उसके 'तौहीद' सिद्धान्त में कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं।

ग्यारहवीं से तेरहवीं शताब्दी तक का समय मुस्लिम पुनरुत्थान युग का था, जबकि ज्ञान विज्ञान के प्राय सभी क्षेत्रों में पुनर्विचार और नव निर्माण का कार्य जारी था जिसका एक परिणाम कला और साहित्य के क्षेत्र में भी लक्षित हुआ। इस कारण सूफीमत के लिए यह क्लासिक युग कहला कर प्रसिद्ध हुआ। इसी युग में फरीदुद्दीन अत्तार, जलालुद्दीन रूमी और शेख सादी जैसे तीन रहस्यवादी कवि ईरान में उत्पन्न हुए। इन तीनों की रचनाओं का मुस्लिम जगत पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा।

सूफीमत के विकास का अन्तिम चरण हाफ़िज़ और जामी के साथ पूर्ण होता है। इसी काल का महमूद शाबिस्त्री की रचना 'गुलशने राज़' है जो वास्तव में सूफीमत के पारिभाषिक शब्दों का प्रश्नोत्तर के रूप में सारांश मात्र है।

हमने लक्ष्य किया है कि सूफीमत में बहुत पहले से नये तत्त्व तथा संशोधन प्रवेश पाने लगे थे। इसका एक कारण इसके व्यापक प्रचार एवं प्रसार में निहित है जिसके मूल में भ्रातृभाव काम करता आ रहा था। फलस्वरूप नये-नये सम्प्रदाय अस्तित्व में आने लगे थे। बारहवीं शताब्दी तक इनके सुसंगठित रूप देखने में आने लगते हैं। प्रारम्भिक युग में त्याग तथा वैराग्य पर आश्रित रह कर जो सूफी जीवन-यापन करने लगे थे उनके इर्द-गिर्द भक्तों की भीड़ जुटने लगी। ऐसे लोग शेख कहला कर प्रसिद्ध हुए। भक्तों में परस्पर भ्रातृ-भाव उत्पन्न होने लगा और उनकी अपनी एक सत्ता भी स्थापित हो गई। अब प्रत्येक शेख का एक मठ होता था। धीरे धीरे उनके लिए विश्राम गृह तैयार होने लगे जो आगे चलकर खानकाह का रूप ले लिये। ग्यारहवीं शताब्दी के खानकाह दक्षिणी ईरान और खुरासान में पाये गये हैं। इनका उपयोग अधिकतर नगरों में हुआ करता था। परिणामतः समुदाय युग काल के अनन्तर समूलीक भी अथवा स्थानापन्न कहला कर प्रसिद्ध हुए जिसका अभिप्राय परिवार से

होता था। इस ही परिवार आगे चल कर साम्प्रदायिक रूप धारण कर लिए जिनका लगाव गुरु अथवा मुर्शिद रूप में संस्थापकों से हुआ करता था।

उत्तराधिकार—कुरान में सूफीमत का बीज रूप में संकेत मिलने से दोनों इस्लाम और सूफीमत की प्राचीनता में कोई सन्देह नहीं रह जाता और इस सम्बन्ध में हज़रत मुहम्मद का भी नाम लिया जाने लगता है। इनके बाद आने वाले नामों में अली का नाम सबसे पहले आता है। यद्यपि लगभग पौन दो सौ सम्प्रदायों में से तीन बिस्तामिया अब्नासिया और नक्शबन्दिया वाले अबू बकर को सब प्रथम स्थान देते हैं। इनमें से केवल नक्शबन्दिया से भारतवासी अधिक परिचित हैं। इसके बावजूद नक्शबन्दिया वाले अपना सम्बन्ध अली से जोड़ लेते हैं। इस प्रकार अली को जो स्थान प्राप्त है वह अन्य किसी को नहीं। यद्यपि सुन्नी मुसलमान अली को चौथा स्थान देते हैं और इसके पहले तीन खलीफाओं अबू बकर, उमर और उसमान को महत्व का मानते हैं। अली उल हुज्वेरी तथा जुनैद ने अली की बड़ी सराहना की है। अली के बाद बसरा के हसन का नाम सर्वोपरि है। उनके सत्तर शिष्यों में से चार व्यक्ति उनकी मृत्यु के बाद पीर नियुक्त हुए थे, यद्यपि इनके नामों को लेकर सूफियों में मतभेद है। किन्तु इनमें हसन की स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता और ये कादिरिया, चिश्तिया तथा सुहरावर्दिया इन तीनों के अध्यात्म गुरु माने जाते हैं। उनकी मां मुहम्मद साहब की एक पत्नी की दासी थी और वे स्वयं बसरा निवासिनी राबिया के समकालीन थे। उनके दो शिष्य ख्वाजा अब्दुल वाहिद ज़ैद और हबीबुल अजमी दो विभिन्न सम्प्रदायों के मुखिया हुए। इनमें से ज़ैदिया सम्प्रदाय के चार और उपविभाग हो गए अयादिया, अधमिया, हुबैरिया तथा चिश्तिया। इसी प्रकार हबीबिया सम्प्रदाय के भी आठ उपविभाग हुए करख़िया, सक़तिया, तयफ़ूरिया, जुनैदिया, गाज़रुनिया, तरतूसिया, सुहरवर्दिया और फिरदौसिया अथवा कुबरविया।

भारतवर्ष में सूफीमत

प्रवेश—भारतवर्ष में इस्लाम के प्रवेश पाने के तीन ही मार्ग हो सकते थे। अरब सागर, स्थल मार्ग और खैबर का दर्रा। उन दिनों भारत संगठित न था। इन्हीं मार्गों से होकर सूफियों तथा दरवेशों ने यहाँ प्रवेश पाया होगा। इतिहास का जहाँ तक पता है भारतवर्ष में इस्लाम सर्वप्रथम अरब व्यापारियों के साथ साथ मालाबार तट पर पहुँचा था। यहाँ पहुँचने का एक अन्य साधन धार्मिक साधु महात्माओं का भी हो सकता था। कहा जाता है कि तमीम अन्सारी ऐसे ही एक महात्मा थे जिनकी कब्र मयलापुर में बनी हुई है। लोगों की यह धारणा है कि ये नबी के साथियों में थे। ऐसा लगता है कि उन दिनों चीन से लेकर लंका तक में प्रचारकार्य चल रहा था। यहाँ उनके प्रचारकों के मकबरे पाये जाते हैं। इब्न बतूता ने लंका में ऐसे कई मकबरे देखा था। मुहम्मद बिन कासिम के सिन्ध आक्रमण के पूर्व का कोई अवशेष ऐसा नहीं मिलता जिससे मुस्लिम बस्तियों का पता चलता हो यद्यपि इससे पूर्व भारत से मुसलमानों का सम्पर्क स्थापित हो चुका था। मुहम्मद की मृत्यु के तीस वर्ष बाद कच्छ में मुआविया ने भारी सेना भेजी थी जहाँ से इस्लाम भारत के प्रवेश द्वार तक पहुँच गया था। खैबर दर्रे से होकर तुर्क, मंगोल और अफगान सेनाएँ भारत में प्रविष्ट हुई जिनके साथ साथ मुस्लिम संन्यासियों और दरवेशों का भारत में आगमन हुआ। इस प्रकार भारत में मुस्लिम सल्तनत कायम होने के पहले से ही इस्लाम से भारत का परिचय हो चुका था। इन सबका एक परिणाम यह हुआ कि नये सम्पर्क के कारण हिन्दुओं तक में कई नये पंथ तथा सम्प्रदाय बन गए। डा० टिटस ने ग्यारह ऐसे नामों को गिनाया है। इनमें अधिकांश [illegible] तथा सम्प्रदाय रहे हैं। पीरजादा, हुसैनी, [illegible], हसनी ब्राह्मण आदि इन्हीं में से हैं।[1] महमूद गजनवी के साथ भी

१—टिटस : इंडियन इस्लाम, पृ० १७२-७३

इसके बाद लाहौर के मुईनुद्दीन शेख इस्माइल का नाम आता है जिन्हें भारत में सर्व प्रथम सूफी के रूप में हम जानते हैं। बाबा रतन का नाम उन हिन्दू महात्माओं में लिया जाता है जो मुहम्मद साहब से मिले थे और जो बाद मक्का भी गये थे। बीबी तन्नूर एक ऐसी ही प्रसिद्ध नामी महिला थीं। उनकी कब्र लाहौर में स्थित है। पाक दामन नाम की अन्य छः महिलाओं के नाम जिनकी कब्रें वहाँ बनी हुई हैं इस प्रकार हैं—(१) बीबी रुकिया अथवा बीबी हाज, जो अली की पुत्री बतलायी जाती है। (२) बीबी हूर (३) बीबी नूर (४) बीबी गौहर (५) बीबी ताज (६) बीबी शाहबाज़। इनमें से अधिकतर हज़रत के शाही घराने की लड़कियाँ थीं जो अली के सगे-सम्बंधियों से ब्याही थीं। इनमें से बीबी तन्नूर उपयुक्त कब्रिस्तान में काम करती थीं। इनके सम्बंध में कई अन्य कथाएँ प्रचलित हैं। इस कब्रिस्तान को बनवाने में महमूद ग़ज़नवी और अकबर का भी हाथ रहा है।

प्रसार—बाबा हाजी आरम्भ में हिन्दू राजकुमार थे जिन्होंने बाबा रतन से प्रभावित होकर इस्लाम अपना लिया था। इस समय उनका नाम अब्दुल्ला था। उनकी मृत्यु सन् ७१९–२० ईसवी में हुई और पाक दामन में ही उनकी कब्र स्थापित कर दी गई। ग्यारहवीं शताब्दी के सूफी संतों में सय्यद सालार मसूद ग़ाज़ी मियाँ अधिक प्रसिद्ध हुए जिन्हें लोग अधिकतर बाले मियाँ कहा करते थे। उनकी कब्र उत्तर प्रदेश के बहराइच ज़िले में बनी हुई है। कहा जाता है कि उनकी माँ महमूद ग़ज़नवी की बहन थीं। इन्होंने युवावस्था में ही अपने चाचा के साथ भी मुल्तान के मार्ग पर धावा करने में सहयोग देना आरम्भ कर दिया था। इसके अतिरिक्त कई स्वतंत्र हमले भी इन्होंने हिन्दुओं पर किये। अन्ततोगत्वा १४ जून १०३३ ईसवी को लड़ते-लड़ते शहीद हुए। इनकी कब्र पर प्रति वर्ष 'उर्स' मनाया जाता है। और यह 'उर्स' देश के अन्य भागों में भी मनाया जाता है और इनके अनुयायी 'हज़ारी फकीर' कहला कर प्रसिद्ध हैं। पूर्वी भारत में 'ग़ाज़ी मियाँ का थान' बनाने की प्रथा है।

इनके समकालीन अफगानिस्तान निवासी अलीउल हुज्वीरी भी हैं जो दाता गंज बख्श कहला कर अधिक प्रसिद्ध हैं। इनकी कई रचनाओं में से 'कश्फुल महजुब' अत्यधिक महत्व की है। इन्होंने फ़ना के मत का समर्थन किया है। इन्हें दिखावे पसन्द न थे। ये ब्रह्मचर्य पालन पर बहुत बल देते थे जिस कारण इन्होंने अविवाहित जीवन व्यतीत किया। इन्होंने सिंध से कैस्पियन सागर तथा सीरिया से तुर्किस्तान तक भ्रमण किया था, जहाँ के सूफी महात्माओं से मिलकर इन्होंने विचार विनिमय भी किया था। इनकी मृत्यु सन् १०६२ ईस्वी अथवा १०७१ ईस्वी में लाहौर आकर हुई थी। पाँच सौ वर्ष के अनन्तर ख्वाजा मुइनुद्दीन द्वारा इन्हें दाता गंज बख्श कहने की परम्परा चल पड़ी। इनके बाद सय्यद अहमद सुल्तान सखी सरवर का नाम आता है। इन्हें लोग अधिकतर लाखी दाता कहा करते हैं। उनके हिन्दू-मुस्लिम शिष्य सुलतानी कहला कर प्रसिद्ध हैं।

मुल्तान के निकट शाहकोट में इनकी मृत्यु सन् ११८१ ईस्वी में हुई थी। इनके शिष्यों की संख्या जलंधर तथा पंजाब में अधिक है। ये गाते बजाते हुए घूम घूमकर अपने मत का प्रचार करते हैं।

ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती चिश्त के सूफी संत ख्वाजा उस्मान हारूनी के शिष्य थे। वे दिल्ली और मुल्तान से होकर अजमेर आये थे और अन्त तक वहीं रहे। कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी इनके शिष्य थे जो दिल्ली में रहा करते थे। इसी समय के अन्य सूफी संत बहाउद्दीन ज़करिया थे जो मुल्तान में पैदा हुए थे। ये सुप्रसिद्ध संत शिहाबुद्दीन सुहरवर्दी के शिष्य थे और इन्होंने खुरासान बगदाद और यरुशलम का भ्रमण किया था। इन्होंने मुल्तान में ही गद्दियों की एक शाखा भी स्थापित की थी। सुप्रसिद्ध फारसी कवि ईराकी इनसे मुल्तान में मिलकर इनके शिष्य हो गया था। इनकी मृत्यु सन् १२६२ ईस्वी में हुई थी। इनके बाद इनके शिष्य शेख सदरुद्दीन और अबुल फतह रुकनुद्दीन को क्रमशः इसके प्रचार का भार सौंपा गया। इनके शिष्य सुहरवर्दी कहला

कर ख्वाजा मुइनुद्दीन के मुरीद हुए। इन्हीं की शिष्य परम्परा में मख-दूम लाल शहबाज़ कलंदर थे जिन्होंने सिन्ध में जाकर अपने मत का प्रचार किया था और उस प्रान्त के सगरपीर की भांति आज तक सम्मानित हैं। वहाँ के हिन्दुओं से सगरपार राजा भर्तृहरि से अभिन्न समझे जाते हैं। इनका एक हिन्दू नाम लाल जसराज भी बतलाया जाता है। इनके मक़बरे तीर्थ स्थान बन गए हैं। इसी काल के एक अन्य प्रसिद्ध सूफ़ी सिन्ध के सय्यद जमाल बुखारी हैं।

गुजरात प्रान्त भी सूफ़ी सन्तों का केन्द्र रहा है। पाटन, कंभात, अहमदाबाद आदि इनमें से प्रमुख स्थान हैं। पाटन के सय्यद मुहम्मद बिन हसन सुप्रसिद्ध सूफ़ी सन्त हो चुके हैं। इन स्थानों में इस्माइलिया और करामातिया जैसे कुछ सम्प्रदाय भी रहे हैं जिनके विरुद्ध अलाउद्दीन खिल्जी को कठोर व्यवहार करना पड़ा था। रज़िया के शासन-काल में ये दिल्ली तक के लिए सिरदर्द बन गए थे जिन्हें बड़ी कठिनाई से दूर किया जा सका। फातिमी शाखा का केन्द्र यमन में था जो गुजरात के स्थानीय निवासियों का धर्म परिवर्तन करा के अपने मत का अनुयायी बना रहे थे। किसी समय मुस्तआलियों के प्रश्न पर ये दो भागों में विभक्त हो गए जिनमें से एक ने अपना केन्द्र भारत को बनाया। एकान्तपन के एक समुदाय ने भारत के पश्चिमी किनारे पर तथा उत्तर-पश्चिम भाग में अपने को स्थापित किया। उनके एक प्रचारक इमाम सदरुद्दीन ने जो सय्यद जलालुद्दीन बुखारी का समकालीन था एक समन्वयवादी मत चलाया जिसमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव त्रिदेव का समावेश कर उन्हें न केवल नबी बनाया गया है अपितु इस्लाम के नबी से अभिन्न ठहराया गया है। इसका प्रभाव हिन्दुओं को मिलाने में बहुत सहायक सिद्ध हुआ है।

चिश्तिया सम्प्रदाय के अनुयायी तथा प्रचारक उत्तर से लेकर दक्षिण भारत तक में फैले हुए हैं। दक्षिण के मुस्लिम सन्तों में चिश्ती पन्थी के सय्यद मुहम्मद गेसूदराज़, मखदूम इब्राहीम शाह ख्वाजा फ़खरुद्दीन,

शेख मुनतखबुद्दीन, ज़री ज़रबख्श और बन्दानवाज़ गेसूदराज जिनका दूसरा नाम मुहम्मद अल् हुसैनी था उल्लेखनीय हैं।

बंगाल में कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के शिष्य शेख जलालुद्दीन सर्वज्ञ बड़े प्रभावशाली सिद्ध हुए। ममलूक सल्तनत के समय तक कई सूफी खानकाह स्थापित हो चुके थे जिनमें आध्यात्मिक सम्पर्क बना हुआ था। कहा जाता है कि बंगाल में सूफीमत का प्रचार करने वालों में उत्तर प्रदेश के जौनपुर केन्द्र के ही अधिक अनुयायी थे।

प्रमुख भारतीय सूफी सम्प्रदाय—भारतवर्ष में जिन प्रमुख चार सम्प्रदायों ने अपना प्रभाव उत्पन्न किया उनमें से चिश्तिया तथा सुहरवर्दिया सम्प्रदाय इसी नया शाखा से थे, जबकि कादिरिया सम्प्रदाय स्वतंत्र शाखा का था। इसी प्रकार नक्शबन्दिया, यद्यपि कुर्दी था से निर्गमित हुआ फिर भी इसका सम्बन्ध अबूबक्र तक से जोड़ा जाता है।

चिश्तिया सम्प्रदाय के संस्थापक ख्वाजा अबूइसहाक शामी चिश्ती बतलाये जाते हैं जो अली की नवीं पीढ़ी में थे। चिश्त खुरासान में स्थित है जहाँ ये एशिया माइनर से आकर बस गये थे। ये मिमशाद अली दिनवरी के शिष्य थे। इस सम्प्रदाय के चार प्रमुख सूफी निम्नलिखित हैं—(१) ख्वाजा अबू अहमद (मृत्यु-काल ९६६ ईसवी) (२) ख्वाजा अबू मुहम्मद (मृत्यु-काल १०२० ईसवी) (३) ख्वाजा अबू युसुफ (मृत्यु-काल १०६७ ईसवी) और ख्वाजा मौदूद (मृत्यु-काल ११३३ ईसवी)। ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती इनकी चौथी पीढ़ी में थे। किन्तु कुछ लोगों ने अबू इसहाक के बजाय चिश्तिया सम्प्रदाय का संस्थापक माना है। इस सम्प्रदाय के लोग 'चिल्ला' मनाते हैं जिसके अनुसार इसके अनुयायी चालीस दिन तक किसी कमरे अथवा मस्जिद में अल्लाह की याद करते हैं। इन दिनों वे कम भोजन करते हैं और रात दिन इबादत में लगे रहते हैं। इनकी एक अन्य विशेषता इनके संगीत प्रेम में पायी जाती है।

कादिरिया सम्प्रदाय का उद्भव अब्दुलकादिर जीलानी से हुआ है।

इसके संस्थापक अब्दुल क़ादिर जिलानी कहे जाते हैं। इनका एक अन्य नाम हसनुल हुसनी भी है। ये बग़दाद वासी शेख़ अबू सईद मुबारक मुख़ रमी के शिष्य हुए थे। इनके कुछ लोगों ने मुख़रमी के बनाये मदरसे को भी बनवाया है जो ग़लत है। इनके गुरु इनदनी सम्प्रदाय के मुखिया थे जिसे उन्होंने अब्दुल क़ादिर को सौंपा था। इसका प्रारम्भ मदरसे में हुआ था जो सन् ११३४ ईसवी में नये भवन में शिक्षा केन्द्र के रूप में परिवर्तित हो गया। यहीं से इसका भर में प्रचार हुआ था। इनकी मृत्यु सन् ११६६ ईसवी में हुई थी। जिसकी तिथि को लेकर काफ़ी मतभेद है। इन्होंने अनेक उपाधियाँ मिली थीं जिनमें से पीरे-दस्तगीर सर्वोत्तम थी। इनका उर्स रबिउस्सानी मास के ग्यारहवें को मनाया जाता है जिसे ग्यारहवीं शरीफ़ कहने की परंपरा है। इनके अनुयायी अपनी टोपियों में कभी-कभी गुलाब के फूल का उपयोग करते हैं।

सुहरवर्दिया सम्प्रदाय की स्थापना पुरानी ख़ानवाद से मानी जाती है जिसके संस्थापक ज़ियाउद्दीन नजीब सुहरवर्दी थे। ये 'अवारिफुल मुरीदीन' के रचयिता कहे जाते हैं। इनकी मृत्यु सन् ११६७ ईसवी में हुई थी। इनके प्रमुख शिष्यों में शेख़ नजमुद्दीन कुबरा का नाम लिया जाता है जो फ़िरदौसिया अथवा कुबरवी ख़ानवाद का संस्थापक समझा जाता है। शिहाबुद्दीन सुहरवर्दी एक अन्य शिष्य थे जो सन् ११४५ ईसवी में पैदा होकर १२ ३४ में मरे थे। ये अपने प्रारम्भिक काल में शेख़ अब्दुल क़ादिर जिलानी के साथ भी रह चुके थे। इनकी रचना 'अवारिफुल मारिफ़' प्रसिद्ध है। इनके शिष्य सय्यद नूरुद्दीन मुबारक ग़ज़नवी दिल्ली में बादशाह अल्तमश द्वारा शेखुल इस्लाम मुकर्रर हुए थे। इसी प्रकार एक अन्य शिष्य बहाउद्दीन ज़करिया मुल्तान में आ बसे थे। इस सम्प्रदाय के एक अन्य मुखिया अमीर मुल्तान शम्सुद्दीन मुहम्मद बिन अली उर्फ़ हुसैनीउल बुख़ारी भी थे जो १ ६६ ईसवी में पैदा हुए थे। इन्होंने तैमूर के आक्रमण काल में बीच बचाव का भी काम किया था।

न उ[illegible] मन्दा[illegible] सम्प्रदाय [illegible] [illegible]

(मृत्यु काल ११८९ ईसवी) बतलाये जाते हैं। जिनकी मृत्यु ईरान में हुई थी। इस सम्प्रदाय के निम्नलिखित उत्तराधिकारी हैं जो मानवीय परंपरा से सम्बद्ध करते हैं—

(१) मुहम्मद, (२) अबू बकर (३) सलमानुल फारसी, (४) क़ासिम (५) जाफर सादिक़ (६) बायज़ीद बिस्तामी, (७) अबुल हसन खरक़ानी (८) शेख अली फारमदी (९) ख्वाजा अबू युसुफ हमदानी (१०) ख्वाजा अब्दुल खालिक़ गुजदवानी, (११) ख्वाजा आरिफ रेवगरी, (१२) ख्वाजा महमूद अंजीर फग़नवी (१३) ख्वाजा अज़ीज़ा शाह अली रामतानी, (१४) ख्वाजा मुहम्मद बाबा सम्मी, (१५) ख्वाजा अमीर सय्यद कुलाल बोखारी, (१६) ख्वाजा बहाउद्दीन नक्शबन्द।

बहाउद्दीन का पुराना सम्बंध तरीक़ए ख्वाजगां से रहा है, किन्तु जब से उसका प्रभाव बढ़ा यह तरीक़ए नक्शबन्दिया कहला कर प्रसिद्ध हुआ। सूफ़ी सम्प्रदायों से समय-समय पर हेर फेर भी होता रहा है। शिष्य परंपरा का सम्बन्ध मुर्शिद के जीवन काल में ही होना आवश्यक न था। दिवंगत सूफ़ियों के नाम पर भी शिष्य-परंपरा चल सकती थी। यहां पर भौतिक सम्पर्क से कहीं अधिक आध्यात्मिक सम्बन्ध को ही महत्व दिया जाता रहा है। यह समय समय पर प्रगतिशील तत्वों को भी अपनाता रहा है अवश्य किन्तु इसका मूलस्रोत कट्टर इस्लाम ही बना रहा है। इस दृष्टि से नक्शबन्दिया का स्थान सर्वोपरि है। ये लोग 'जिक्र खफ़ी' मानते हैं, जिक्र जली नहीं। इन्हें एकादश व्रतों का पालन करना पड़ता है जिनमें से आठ अब्दुल ख़ालिक़ के रचे हुए हैं और शेष तीन बहाउद्दीन के।

इस सम्प्रदाय-सूफ़ीमत का प्रभाव कई शताब्दियों तक तुर्की, अफ़्रीका, ईरान, मध्य एशिया और उत्तर भारत में अधिक रहा है। इधर पश्चिम स्थान भी उसका केन्द्र बन चुका है। चारों प्रमुख सम्प्रदायों के कई उपभेद हो गए हैं। चिश्तिया सम्प्रदाय के निज़ामी और साबिरी दो भेद हैं। फिर निज़ामी में हिस्सामिया और फख्रिया दो उप-भेद हैं। इसी

परिणति–सातहवीं शताब्दी में युरोपीय चेतना तथा जागरण का प्रभाव मुस्लिम देशों पर भी पड़ने लगा। इस प्रभाव के कारण इन देशों की स्थिति क्षीण से क्षीणतर होती गई। सत्रहवीं शताब्दी का अन्त होते होते पूरा एशिया क्षीण हो चला। पश्चिमी राष्ट्रों का प्रभाव-क्षेत्र विस्तार पाने लगा। उनकी नयी खोजों ने विकास का नया मार्ग-खोज लिया। युरोपीय देशों की सैन्य शक्ति, कूटनीति और औद्योगिक क्षमता बेजोड़ मानी गई। इसके प्रभाव से मुस्लिम भी अछूता न रह सका। जीवन और जगत के प्रति दृष्टिकोण बदलने लगे। पुराने मूल्यों के स्थान नये मूल्य लेने लगे। भारतवर्ष भी कुछ ... इसकी लपेट में आ गया।

सूफीमत ने अपनी प्रारम्भिक अवस्था में पवित्रता सन्यास तथा ... पर अधिक बल दिया था। सदाचार को सूफियों के यहाँ ऊँचा स्थान था। वे कोरे उपदेशक मात्र न थे अपितु अपने आचार के प्रति भी निष्ठावान थे। उनका लक्ष्य सत्य का अनुयायी होना था। परन्तु परवर्ती काल में उनके सहधर्मी उनके सिद्धान्तों तथा आदर्शों के आलोचक बन बैठे। नाना प्रकार की शंकाएँ की जाने लगीं। उन सिद्धान्तों की मनमानी व्याख्या तक की जाने लगी। धीरे-धीरे कर्मकाण्ड का प्रसार होने लगा और आध्यात्मिक स्थान के स्थान पर ... तथा ... ने घर कर लिया। उच्च नैतिक आदर्शों के अभाव में अनभिज्ञ तथा ... दिन पर दिन अनाचार का शिकार होने लगा। इसी प्रभाव ने पीरों और मुरशिदों के ... को समाप्त कर दिया। तुर्की में मुस्तफा कमालपाशा ने भी इसकी जड़ खोदने में कोई कसर उठा नहीं रखी।

परवर्ती सूफियों ने पुरातन ग्रन्थों की टिप्पणियों तथा व्याख्याओं को भुला कर कुरान और हदीस की उपेक्षा करनी आरम्भ कर दी। इनमें से कुछ ... और ... की ओर ... सब ... गाधीय ... में ... गए। ... दार्शनिक आधार ... तथा ... होने लगे।

शाह वलीउल्ला के शब्दों में—"इन बहुरूपिया, उपदेशकों मिथ्या धारियों और खानकाह निवासियों से मैं कहता हूँ कि ह मयम तथा भक्ति के पावकों एवं समर्थकों तुम सारहीन धारियों में भटक रहे हो और तुच्छ तथा शुष्क कार्यों को अपना रहे हो। तुमने जनसमुदाय को सांसारिक कार्यों की ओर आमन्त्रित किया है। तुमने सृष्टि पर जीवन का वेग संकीर्ण तथा संकुचित कर दिया है। यद्यपि तुमको प्रसार के लिए नियुक्त किया गया था, न कि संकीर्णता के लिए। तुमने आसक्त प्रामया के कथनों को अपना जीवन का श्रेष्ठ मार्ग निर्देशक मान लिया है। यद्यपि ये बातें प्रचार करने की नहीं हैं, अपितु लपेट कर रख देने की हैं।

परन्तु जब तक जीवन में नानकता और सदाचार तथा स्नेह-सौहार्द एवं सहानुभूति-सहयोग जैसे मानवी गुणों का महत्व बना हुआ है तब तक सूफीमत उसी आदर भाव से देखा जायेगा जबकि महान आदर्शों को लेकर वह प्रादुर्भूत हुआ था।

—नर्मदेश्वर चतुर्वेदी

विषय प्रवेश

इस पुस्तक के नाम से ही यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट है कि इसे क्यों सत्य की खोज करने वाले व्यक्तियों या उनके समूहों के साहसिक कार्यों और परिश्रम का उदाहरण प्रस्तुत करने वाली माला में सम्मिलित किया गया है। इस्लाम के धार्मिक दर्शन सूफीमत की प्राचीनतम विद्यमान परिभाषा में 'आध्यात्मिक सत्यों को समझना' कहा गया है और मुसलमान रहस्यवादियों को स्वयं को 'अहलुल हक़' (सत्यानुयायी) कहना बहुत प्रिय है। उनके मुख्य सिद्धांतों का इस दृष्टिकोण से वर्णन करते समय मैं किसी सीमा तक उस सामग्री का उपयोग करूँगा, जिसे मैंने गत बीस वर्षों में इस्लामी रहस्यवाद के सामान्य इतिहास के लिये एकत्र किया है। यह विषय इतना विशाल और बहुमुखी है कि इसके साथ पूर्ण न्याय करने के लिये कई भारी ग्रन्थों की आवश्यकता पड़ेगी। यहाँ पर मैं आध्यात्मिक जीवन के केवल कुछ सिद्धान्तों तरीकों और विशिष्ट रूप रेखाओं का, जिनका पालन ईसवी सन् की आठवीं शताब्दी से वर्तमान समय तक आध्यात्मिक जीवन बिताने वाले प्रत्येक वर्ग और अवस्था के मुसलमानों ने किया है, स्थूल-वर्णन कर सकता हूँ। जिन मार्गों से होकर वे गुज़रे वे बहुत दुर्गम हैं वे दुरत्य पथ-हीन शिखर अन्धकारमय और व्याकुल कर देनेवाले हैं। किन्तु यदि हम उन यात्रियों का साथ उनकी यात्रा के अन्त तक निभाने की आशा न भी करें, तो भी उनके धार्मिक वातावरण और आध्यात्मिक इतिहास के बारे में जो कुछ सूचना हमने एकत्र की है, वह हमें उनके द्वारा लिखी विचित्र अनुभूतियों को समझने में अवश्य मदद देगी।

अतएव सर्वप्रथम मैं सूफीमत के आविर्भाव और ऐतिहासिक विकास, इसका इस्लाम से सम्बन्ध और इसकी सामान्य प्रकृति के बारे में थोड़ी-सी

बातें बता देना चाहता हूँ। ये विषय धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करने वाले विद्यार्थी के लिये तो रोचक हैं ही, स्वयं सूफीमत का गम्भीर अध्ययन करने वालों के लिये भी इनका कुछ ज्ञान होना अत्यावश्यक है। यह कहना बिल्कुल सत्य है कि सभी रहस्यात्मक अनुभूतियाँ अन्त में एक ही बिन्दु में समाहित हो जाती हैं, किन्तु यह बिन्दु रहस्यवादी के धर्म, जाति और स्वभाव के अनुसार विभिन्न रूप धारण कर लेता है जब कि उस एक बिन्दु तक पहुँचनेवाली रेखायें अनन्त प्रकार की होती हैं। यद्यपि सभी बड़े प्रकार के रहस्यवादों में कुछ बातें सामान्य होती हैं, फिर भी प्रत्येक को उन विलक्षण विशेषताओं द्वारा पहिचान लिया जाता है, जो उन परिस्थितियों के कारण उसमें आयीं जिनमें उसका आविर्भाव और विकास हुआ। जिस प्रकार ईसाई रहस्यवाद को बिना ईसाई धर्म के संदर्भ के नहीं समझा जा सकता, उसी प्रकार इस्लामी रहस्यवाद को भी समझने के लिये इस्लाम के बाह्य और आन्तरिक विकास पर ध्यान देना आवश्यक है।

'मिस्टिक' (रहस्यवादी) शब्द यूनानी धर्मशास्त्र से यूरोपीय साहित्य में आया है। इस्लाम की तीन प्रमुख भाषाओं अरबी, फारसी और तुर्की में इसे 'सूफी' शब्द से व्यक्त किया जाता है। मूल रूप से ये शब्द पर्यायवाची नहीं हैं क्योंकि 'सूफी' शब्द में एक विशेष धार्मिक सम्बन्ध या अनुशासन पाया जाता है और इसका व्यवहार केवल उन रहस्यवादियों के लिए होता है जो इस्लाम धर्म में विश्वास रखते हैं। यद्यपि समय की गति के साथ इस अरबी शब्द ने यूनानी शब्द के उच्च अर्थ—पवित्र शब्दों द्वारा मूक वाणी, अभिव्यक्ति करने के उल्लास में कई बातें—को ग्रहण कर लिया, तथापि जब इसका पहले पहल प्रचलन लगभग सन् ८०० ई० में हुआ तो इसका अर्थ साधारण ही था। अभी तक सब इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में मतभेद था। अधिकांश 'सूफी' शब्द शास्त्र की उपेक्षा करते हुये इसे अरबी धातु 'सफा' से व्युत्पन्न मानते हैं, जिसका अर्थ 'शुद्धता' होता है। इसके अनुसार 'सूफी' का अर्थ 'पवित्र हृदय आत्मा' या 'परमात्मा

के प्रियजनों में एक' होगा। कुछ यूरोपीय विद्वानों ने इसका सादृश्य 'सोफ़िया' से 'थियोसोफ़िस्ट' (ब्रह्मवादी) के अर्थ में स्थापित किया है। किन्तु नोएल्देके ने बीस वर्ष पूर्व लिखित एक लेख में यह निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया है कि यह नाम 'सूफ़' (ऊन) शब्द से ग्रहण किया गया था और प्रारम्भ में इसका प्रयोग उन मुसलमान तपस्वियों के लिये होता था जो ईसाई साधुओं के अनुकरण में पश्चात्ताप और सांसारिक नि सारता के प्रति विरक्ति के चिह्न-स्वरूप मोटा ऊनी वस्त्र धारण करते थे।

प्रारम्भिक काल के सूफ़ी वास्तव में रहस्यवादी होने की अपेक्षा तापस और एकान्तवासी अधिक थे। पाप के प्रति अत्यधिक चेतना और क़यामत तथा नरकाग्नि की यातनाओं के भय ने उन्हें सांसारिक प्रलोभनों से दूर भगा कर मुक्ति की खोज करने की प्रेरणा दी। इन बातों को अच्छी तरह समझना हमारे लिये बहुत कठिन है। क़ुरान में इनका अत्यन्त विशद चित्रण किया गया है। दूसरी ओर क़ुरान से उन्हें यह भी चेतावनी मिलती थी कि मोक्ष प्राप्ति पूर्णरूप से अल्लाह की दुर्बोध इच्छा पर निर्भर है। वही भले आदमियों को सही रास्ता दिखाता है और दुष्टों को भटका देता है। परमात्मा की दूरदर्शिता की अनन्त तख्ती पर उनका भाग्य लिखा हुआ है और कोई भी उसे बदल नहीं सकता। केवल इतना ही निश्चित था कि यदि रोज़ा (व्रत), नमाज़ और सत्कार्यों द्वारा मुक्ति मिलना उनके भाग्य में बदा है तो वे अवश्य मुक्त हो जायेंगे। ऐसे विश्वास का स्वाभाविक अन्त एकान्तवास और परमात्मा की इच्छा पर अपने को पूर्ण रूप से छोड़ देने में होता है। सूफ़ीमत के प्रारम्भिक रूप की यही विशिष्ट चित्त-वृत्ति है। आठवीं शताब्दी में मुसलमानों के धार्मिक जीवन का मुख्य-स्रोत भय था। परमात्मा, नरक, मृत्यु और पाप का भय हमेशा उनके मन में समाया रहता था। किन्तु इसकी विरोधी प्रेरक-शक्ति ने भी अपना प्रभाव दिखाना शुरू कर दिया था और क्रम क्रम राबिया जैसी साध्वी स्त्री के रूप में सच्चे रहस्यवादी आत्म-त्याग का प्रत्यक्ष और उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत कर दिया था।

यहाँ तक तो सूफी और सनातन पंथी कट्टर मुसलमान में कोई बड़ा अन्तर नहीं था, सिवाय इसके कि सूफी लोग कुरान में वर्णित कुछ सिद्धान्तों को असाधारण महत्व देते थे और दूसरे सिद्धान्तों की जिन्हें बहुत से मुसलमान समान रूप से आवश्यक समझते थे, उपेक्षा करते हुए उनका निरास करते थे। यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि सायस आन्दोलन को ईसाई आश्रमों ने अनुप्राणित किया और यह आन्दोलन इस्लाम की क्रियाशील और विलास प्रिय भावना के बिलकुल विपरीत था। एक प्रसिद्ध आयत में पैग़म्बर ने भिक्षुओं के आत्म-संयम को बुरा बताया है और अपने अनुयायियों को काफ़िरों के विरुद्ध जिहाद (धर्म युद्ध) में लगे रहने का आदेश दिया है। जैसा कि सर्वविदित है उन्होंने विवाह के पक्ष में ठोस प्रमाण दिये हैं। यद्यपि उनके द्वारा ब्रह्मचर्य की निन्दा प्रभाव हीन नहीं सिद्ध हुई, फिर भी उनके उत्तराधिकारियों द्वारा फ़ारस, सीरिया और मिस्र की विजयों ने मुसलमानों को ऐसे विचारों के सम्पर्क में ला दिया जिन्होंने उनके जीवन तथा धर्म के प्रति दृष्टिकोण को बहुत कुछ परिवर्तित कर दिया। कुरान का अध्ययन करने वाले यूरोपीय विद्वान इसमें महान् समस्याओं को हल करते समय इसके रचयिता की अस्थिरता और असंगति पाये बिना न रहेंगे। मुहम्मद साहब को स्वयं इन असंगत वचनों का ज्ञान नहीं था और न वे उनके उन सच्चे अनुयायियों के लिये बाद अवरोध ही थे, जिन्होंने अपनी भोली श्रद्धा के कारण कुरान को 'अल्लाह के वचन' के रूप में स्वीकार कर लिया। किन्तु मतभेद तो था ही और शीघ्र ही इसके फल स्वरूप दूरगामी परिणाम सामने आ गये।

इन्हीं कारणों ने निम्नलिखित सम्प्रदायों को जन्म दिया—'मरजाई' जो धर्म में विश्वास करते थे और परमात्मा के प्रति प्रेम और सन्धीक्षा पर ज़ोर देते थे 'क़ादिरी' जो इस बात का दावा करते थे और 'जाबिरी' जो इस बात से इनकार करने थे कि मनुष्य अपने कार्यों के लिए स्वयं ही उत्तरदायी है 'मोताज़ली' जिन्होंने तर्क के आधार पर धर्मशास्त्र का

निर्माण किया और जो प्रारब्धवाद को उसके न्याय के विरुद्ध मान कर अस्वीकार करते हैं और अन्त में आते हैं 'अशअरी' जो इस्लाम में पण्डितवाद के प्रवर्तक हैं और जिन्होंने उस आध्यात्मिक और आदेशात्मक पद्धति का निर्माण किया जो सनातनपन्थी मुसलमानों के सम्प्रदाय में अब भी विद्यमान है। ये सारी विचार धारायें यूनानी धर्म और दर्शन से प्रभावित थीं और सूफीमत पर इनकी जबरदस्त प्रतिक्रिया हुई। हिजरी सन् की तीसरी शताब्दी के प्रारम्भ में या नवीं शताब्दी ईस्वी में हम इसमें उठने वाले नये गम्भीर व स्पष्ट चिह्न पाते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सूफियों ने अपने शरीर को कष्ट देना और अपनी दरिद्रता पर गर्व करना छोड़ दिया, वरन् यह है कि वे अब तपश्चर्या को एक लम्बे सफर की पहली मंजिल मात्र मानने लगे। वे इसे ऐसे बड़े आध्यात्मिक जीवन के लिये प्रारम्भिक प्रशिक्षण मानने लगे जिसकी केवल तप करने वाला कल्पना भी नहीं कर सकता। मैं कुछ ऐसे वाक्यों को उद्धृत करके, जो उस काल के रहस्यवादियों से हम तक पहुँचे हैं, इस परिवर्तन का स्वरूप समझाने का प्रयास करूँगा।

"प्रेम मनुष्यों से नहीं सीखा जाता। यह परमात्मा का एक वरदान है और उसी की कृपा से प्राप्त होता है।"

"सिवाय उसके, जिसके हृदय में उसे परलोक की चिन्ता में सदैव व्यस्त रखने वाला प्रकाश हो, कोई भी इस संसार की विषय-वासनाओं से मुक्त नहीं हो सकता।"

"जब ज्ञानी की आध्यात्मिक आँखें खुल जाती हैं, तब उसकी दैहिक आँखें बन्द हो जाती हैं। वह सिवाय परमात्मा के कुछ भी नहीं देखता।"

"यदि ज्ञान दृश्य रूप धारण कर ले तो उसे देखने वाले सभी लोग उसका सौन्दर्य, लावण्य, माधुर्य और स्वभाव देख कर मर मिटें और उसकी प्रभा के समक्ष प्रत्येक चमक फीकी पड़ जाय।" १

"ज्ञान बोलने की अपेक्षा मौन के अधिक समीप है।"

"जब हृदय इसलिये रोता है कि इसने खो दिया है, तब आत्मा इसलिये हँसती है कि इसने पा लिया है।"

"जिस प्रकार परमात्मा का दर्शन करने वाली किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं रह जाता वैसे ही परमात्मा का दर्शन करने वाली कोई वस्तु नाश भी नहीं होती। क्योंकि परमात्मा का जीवन नित्य है, इसलिये उसे देखने वाला भी उसके द्वारा नित्य बना दिया जाता है।"

"हे परमात्मा! जब मैं पशुओं की पुकार, वृक्षों का कम्पन, पानी की कलकल ध्वनि, चिड़ियों की कूक, हवा की सरसराहट या बिजली की कड़क सुनता हूँ तो मुझे भासित होता है कि ये तेरी एकता के साक्षी हैं और इस बात के प्रमाण हैं कि तेरे समान कोई वस्तु नहीं है।"

"हे मेरे परमात्मा! मैं तुझे सर्वसाधारण के बीच ऐसे बुलाता हूँ जैसे लोग स्वामी को बुलाते हैं किन्तु एकान्त में मैं तुझे माशूक की तरह सम्बोधित करता हूँ। सर्वसाधारण के मध्य मैं कहता हूँ, 'ऐ मेरे परमात्मा!' किन्तु एकान्त में मैं कहता हूँ 'ऐ मेरे माशूक'!"

प्रकाश, ज्ञान और प्रेम ये सूफीमत के प्रधान स्वर हैं और आने वाले अध्यायों में मैं यह दिखाने का प्रयास करूँगा कि कैसे इनका विकास हुआ। अन्ततोगत्वा इसका आधार वह सर्वात्मवादी विश्वास है, जिसने इस्लाम के 'एक सर्वोपरि परमात्मा' को पदच्युत कर उसके स्थान पर 'एक वास्तविक सत्ता' की स्थापना की, जिसका सिंहासन 'क़ल्ब-उल् इन्सान' (स्वर्गों का भी स्वर्ग) की अपेक्षा मानव हृदय में अधिक है और जो सतत विस्तार और क्रियाशील रहता है। आगे बढ़ने से पहले एक प्रश्न का उत्तर दे देना अधिक सुविधाजनक होगा, जो कि पाठकों के मन में स्वतः उठेगा—आखिर नवीं शताब्दी के मुसलमानों ने इस सिद्धान्त को कहाँ से ग्रहण किया!

आधुनिक शोध कार्यों से यह सिद्ध हो चुका है कि सूफीमत के आविर्भाव का कोई एक ही निश्चित कारण नहीं दिया जा सकता। ऐसी

से बढ़ती हुई यह विचार धारा भी गलत साबित हो चुकी है कि सूफ़ीमत एक निर्जीव सेमिटिक धर्म के विरुद्ध आर्य-मस्तिष्क की प्रतिक्रिया है और तत्त्वतः भारतीय या ईरानी चिन्तन का फल है। इस प्रकार के कथन अंशतः सत्य होने पर भी इस सिद्धान्त की अवहेलना कर देते हैं कि 'अ' और 'ब' में ऐतिहासिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिये उनकी एक दूसरे से समानता के प्रमाण ही प्रस्तुत कर देना पर्याप्त नहीं है, बिना साथ ही साथ यह दिखाये हुये कि (१) 'ब' का 'अ' से यथार्थ सम्बन्ध ऐसा था जिससे मानी हुई उत्पत्ति सम्भव हो सके। (२) जो अनुमान लगाया जाय वह सभी सुनिश्चित और उपयोगी तथ्यों पर ठीक उतर सके। जिन अनुमानों का उल्लेख मैंने किया है वे इन शर्तों को पूरा नहीं करते। यदि यह मान भी लिया जाय कि सूफ़ीमत आर्य-भावना के विद्रोह के अतिरिक्त और कुछ नहीं था, तो इस असन्दिग्ध तथ्य की व्याख्या कैसे की जायगी कि मुसलमानी रहस्यवाद के कुछ प्रचुर अग्रदूत सीरिया और मिस्र के निवासी और अरब जाति के थे? इसी प्रकार इसकी उत्पत्ति बौद्ध धर्म या वेदान्त से बताने वाले यह भूल जाते हैं कि इस्लामी सभ्यता पर भारतीय प्रभाव की मुख्य धारा बाद के समय की है, जबकि मुसलमानी धर्मशास्त्र, दर्शन और विज्ञान ने अपनी प्रथम प्रचुर जड़ें ऐसी भूमि पर जमायीं जो यूनानी संस्कृति से पूर्ण रूप से तर थी। सच बात तो यह है कि सूफ़ीमत एक मिश्रित वस्तु है और इस कारण इस प्रश्न का, कि इसका आविर्भाव कैसे हुआ, कोई सीधा उत्तर नहीं दिया जा सकता। जब हम सूफ़ीमत का निर्माण करने वाले विभिन्न आन्दोलनों और शक्तियों का अन्तर समझ लेंगे और यह निश्चित कर लेंगे कि इसके विकास की प्रारम्भिक अवस्था में इसे किस दिशा में चलना चाहिये, तो इस प्रश्न का उत्तर हमें अपने आप मिल जायगा।

सर्व प्रथम हम सबसे महत्त्वपूर्ण बाह्य, अर्थात् ग़ैर इस्लामी प्रभावों पर विचार करेंगे।

१—ईसाई धर्म

यह स्पष्ट है कि तप और एकान्तवाद की प्रवृत्तियाँ, जिनका उल्लेख मैं कर चुका हूँ, ईसाई सिद्धान्त के साथ मेल खाती हैं और उन्हें वहाँ से पोषण प्राप्त होता है। इञ्जील के बहुत से मूल पाठ तथा ईसा के सन्दिग्ध वचन प्राचीनतम सूफ़ियों की जीवन कथाओं में उद्धृत हैं और बहुधा ईसाई सन्यासी (राहिब) शिक्षक के रूप रखते मुसलमान तपस्वियों को शिक्षा और उपदेश देते हुये दिखाई पड़ते हैं। हम देख चुके हैं कि ऊनी वस्त्र (सूफ़) जिससे सूफ़ी नाम की व्युत्पत्ति हुई है ईसाई धर्म से निकला है। खोजने पर मौनव्रत, ज़िक्र (जिक्र) और अन्य तापसी क्रियाओं का मूल स्रोत भी यहीं मिल जाता है। जहाँ तक परमात्मा से प्रेम का सम्बन्ध है, निम्नलिखित उद्धरण स्वयं अपने साक्षी हैं —

'ईसा तीन आदमियों के पास से गुज़रे। उनके शरीर दुर्बल और चेहरे पीले थे। उन्होंने उनसे पूछा, 'तुम्हारी यह दुर्दशा कैसे हुई?' तीनों आदमियों ने उत्तर दिया, 'नरकाग्नि के भय से'। ईसा ने कहा, 'तुम एक निर्मित वस्तु से भय खाते हो परमात्मा के लिये उचित ही है कि भय खाने वालों की रक्षा करे।' वे उन्हें छोड़कर आगे बढ़े और अन्य तीन आदमियों के पास आये। उनके शरीर और भी अधिक दुर्बल और चेहरे और भी अधिक पीले थे। उन्होंने उनसे पूछा, 'तुम्हारी यह दुर्दशा कैसे हुई?' उन लोगों ने उत्तर दिया, 'स्वर्ग की अभिलाषा से।' ईसा ने कहा, 'तुम एक निर्मित वस्तु की कामना करते हो। परमात्मा के लिये उचित ही है कि वह तुम्हें तुम्हारी इच्छित वस्तु प्रदान करे।' वे और आगे बढ़े और अन्य तीन आदमियों के पास पहुँचे। वे लोग सबसे अधिक पीले और दुर्बल थे। यहाँ तक कि उनके चेहरे प्रकाश में दर्पण की भाँति चमक रहे थे। ईसा ने पूछा, 'तुम्हारी यह दशा कैसे हुई?' उन्होंने उत्तर दिया, 'हमारे परमात्मा के प्रति प्रेम के कारण।'

ईसा ने कहा, 'तुम्हीं उसके सर्वाधिक सन्निकट हो, तुम्हीं उसके सर्वाधिक सन्निकट हो' ।"

सीरिया (शाम देश) के रहस्यवादी अहमद इब्न अल-हवारी ने एक दफा एक ईसाई साधु से पूछा, "तुम्हारे धर्मग्रन्थों में सबसे बड़ा आदेश कौन-सा है ?" साधु ने उत्तर दिया, "हमें इससे बड़ा आदेश और कोई नहीं मिलता 'तू अपने स्रष्टा से अपनी समस्त शक्ति भर प्रेम कर' ।"

किसी मुसलमान तापस ने एक दूसरे ईसाई साधु से पूछा था—"मनुष्य कब अपनी भक्ति में सबसे अधिक दृढ़ होता है ?" उसे उत्तर मिला था—"जब उसके हृदय पर प्रेम का आधिपत्य हो जाता है, क्योंकि उस समय उसमें भक्ति में लगे रहने के सिवाय दुख या सुख का कोई भाव नहीं रह जाता ।"

अपने साधुओं, भिक्षुओं और नास्तिक सम्प्रदायों (जैसे मसायी या यूक्यइटा) के द्वारा ईसाई धर्म का दोहरा प्रभाव पड़ा एक तपश्चर्या के क्षेत्र में और दूसरे रहस्यवादी क्षेत्र में । प्राच्य ईसाई रहस्यवाद नूतनीकृत तत्व भी था । इसने बहुत पहले ही प्लाटिनस की और नव अफलातूनी दर्शन की भाषा और उनके विचारों को ग्रहण कर लिया था ।

२—नव अफलातूनी दर्शन (Neo-Platonism)

इस्लामी दर्शनशास्त्र में अफलातून (प्लेटो) का नहीं, बल्कि अरस्तू (अरिस्टाटिल) का व्यक्तित्व महत्वपूर्ण है । प्लाटिनस (Plotinus) के नाम से तो, जिसे सामान्यतः 'अश्शैखुलयूनानी' (ग्रीक या यूनानी गुरु) कहा जाता था, कुछ कम मुसलमान परिचित हैं । किन्तु, चूँकि अरबों को अरस्तू का प्रथम परिचय उसके नव अफलातूनी भाष्यकारों द्वारा ही प्राप्त हुआ, इसलिये जिस पद्धति के रंग में वे रंगे वह पारफिरी (Porphyry) और प्रोक्लस (Proclus) की थी । इस प्रकार सदा

कथित 'अरस्तू का धर्मशास्त्र' जिसका एक अरबी संस्करण नवीं शताब्दी में प्रकाशित हुआ, यथार्थ में नव अफ़लातूनी दर्शन का ही ग्रन्थ था।

इस विचारधारा का एक दूसरा कार्य भी विशेष ध्यान देने योग्य है। मेरा तात्पर्य उन लेखों से है जिन्हें झूठमूठ आरियोपैगस निवासी डायोनिसियस, सण्टपाल के दीक्षित शिष्य, का बताया जाता है। यह छद्म डायोनिसियस जो शायद कोई सीरियाई भिक्षु रहा हो, अपना गुरु किसी हायरोथियस को बताता है, जिसे आदिदृष्टया ने यान्नूर सरूजी (४५१-५२१ ई०) के समकालीन प्रसिद्ध सीरियाई महाज्ञानी स्टेफ़ेन बार सुदैली के रूप में स्वीकार किया है। डायोनिसियस ने इस स्टेफ़ेन के प्रेम-सम्बन्धी मननों से कुछ अंश उद्धृत किये हैं। एक पृथक् कृति 'दि बुक आफ़ हायरोथियस ऑन दि हिडेन मिस्टरीज़ आफ़ दि डिविनिटी' की अनोखी हस्तलिखित प्रति भी हमें प्राप्त हुई है। यह 'ब्रिटिश म्यूज़ियम' में सुरक्षित है। डायोनिसियस के लेखों ने, जिनका अनुवाद जॉन स्कॉटस इरिगेना ने लेटिन भाषा में किया, पश्चिमी यूरोप में मध्यकालीन ईसाई रहस्यवाद की नींव डाल दी। उनका प्रभाव पूर्व में भी महत्वपूर्ण था। उनका अनुवाद शीघ्र ही सीरियाई भाषा में उनके प्रकाशित होने के कुछ बाद ही हुआ। उनके सिद्धान्तों का उसी भाषा में भाष्यों द्वारा बड़े ज़ोर शोर से प्रचार हुआ। "सन् ८५० ई० के लगभग डायोनिसियस टाइग्रिस (दजला नदी) से अटलांटिक महासागर तक प्रसिद्ध था।"

साहित्यिक परम्परा के अतिरिक्त अन्य धारायें भी थीं, जिनके द्वारा उत्पत्ति, मरणोपरान्त प्राप्ति, ज्ञान और आह्लाद के सिद्धान्त प्रचारित हुये, किन्तु पाठकों को आश्वस्त करने के लिए यह सम्भव रूप से कहा जा चुका है कि आबुलफ़ज़्ल यूनानी रहस्यवादी विचारों से परिपूर्ण था और ये विचार पश्चिमी एशिया और मिस्र के मुसलमान निवासियों तक जिन्होंने ग्रहण किया। जन्म लिया, करानी से पहुँच सकते थे। जिन भाषा में इसके विकास में प्रमुख भाग लिया उनमें मिस्र देश का निवासी ज़ुन्नून भी एक था। वह दार्शनिक और कीमियागर था दूसरे शब्दों

में यूनानी विज्ञान का विद्यार्थी कहा गया है। अब आगे यह कहा जाता है कि उसकी कल्पना डायोनिसियस के लेखों में पाई जाने वाली बातों से मेल खाती है तो हम बिना झिझक इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि नव अफ़लातूनी दर्शन ने इस्लाम में उसी रहस्यवादी तत्व का अर्क थोड़ी परिमाण में डाला, जिससे ईसाई धर्म पहले से ही सराबोर था। मैं इसकी ओर संकेत कर चुका हूँ और सामान्य आधारों पर यही सबसे अधिक सम्भव भी है।

३—नास्तिक मत

यद्यपि कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता, फिर भी प्रारम्भिक सूफ़ी चिन्तन में परम ज्ञान का सिद्धान्त जिस प्रमुख स्थान पर प्रतिष्ठित है वह इसका इशारा नास्तिक मत से सम्बन्ध होने की ओर संकेत करता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि मारूफ़ अल् करखी से, जिसकी सूफ़ीमत की परिभाषा 'परमात्मा सम्बन्धी सत्य को समझना' मैंने इस प्रस्तावना के प्रथम पृष्ठ पर उद्धृत की है, माता पिता 'साबी' या मैंडियनियन बताए जाते हैं। ये बसरा और वासित के मध्य बेबीलोनिया की दलदली भूमि में रहते थे। दूसरे मुसलमान सन्तों ने 'इस्म आज़म' (परम नाम) का रहस्य सीखा था। इब्राहीम इब्न अदहम को एक व्यक्ति ने, जो उसे मरुभूमि में यात्रा करते समय मिला था, बताया था और ज्योंही उसने इसका उच्चारण किया उसे पैग़म्बर ख़िज्र का दर्शन हुआ। प्राचीन सूफ़ियोंने 'मानी धर्म' से 'सिद्दीक़' शब्द को अपना लिया। इसका प्रयोग वे अपने आध्यात्मिक गुरुओं (सिद्धों) के लिये करते थे और परवर्ती काल के एक वर्ग ने, जिसने 'मानी' के द्वैतवाद को स्वीकार कर लिया था, यह विचार था कि दृश्यमान् जगत की विभिन्नता प्रकाश और ... के सम्मिश्रण से उत्पन्न होती है।

"मनुष्य के कर्म का आदर्श अन्धकार रूपी कलंक से मुक्त होना है और अन्धकार से प्रकाश की मुक्ति का अर्थ है प्रकाश के रूप में प्रकाश की आत्म चेतना।"

सत्तर हजार पर्दों वाले सिद्धान्त का निम्नलिखित वर्णन, एक आधुनिक सिर्रार्ड दरवेश की व्याख्यानुसार, नास्तिक मत के स्पष्ट लक्षणों से परिपूर्ण है। यह इतना रोचक है कि मैं इसे उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकता—

"अल्लाह को, जो वाहिद हकीकत (एक मात्र सत्य) है, सत्तर हजार पर्दे पदार्थ और इन्द्रिय से बने संसार से पृथक करते हैं। प्रत्येक रूह (आत्मा) जन्म से पूर्व इन सत्तर हजार पर्दों से होकर गुजरती है। इनके भीतर के आधे पर्दे तो तजल्ली (प्रकाश) के हैं और बाहरी आधे तारीकी (अन्धकार) के हैं। अपने जन्म की ओर यात्रा करते समय प्रत्येक प्रकाश के पर्दे को पार करते समय आत्मा परमात्मा के एक-एक गुण छोड़ती जाती है और प्रत्येक अंधकार के पर्दे को पार करते समय एक-एक सांसारिक गुण धारण करती जाती है। इसी कारण बच्चा रोता हुआ जन्म लेता है क्योंकि आत्मा अपना विलगाव अल्लाह से, जो एक मात्र सत्य है, जानती है। जब बच्चा निद्रा में चिल्ला उठता है तो इसका यह कारण है कि आत्मा अपनी कोई वस्तु याद करती है अन्यथा पर्दों द्वारा गुजरने में निसियान् (विस्मृति) छा जाती है। इसी कारण कहा गया है कि 'अल् इन्सान मुरक्कबुल खता वनूनिसयान" अर्थात् मनुष्य विस्मृति एवं भूलों का सम्मिश्रण है। अब आत्मा अपनी देह में बन्दी हो जाती है और इन आठ पर्दों द्वारा अल्लाह से पृथक कर दी जाती है।"

"किन्तु दरवेशों के मार्ग सूफीमत का समग्र उद्देश्य है आत्मा को इस बन्दीगृह से मुक्ति दिलाना, सत्तर हजार पर्दों का पूर्ण ज्ञान कराना और इस देह में रहते हुए ही आत्मा को परमात्मा के साथ उसके प्रारम्भिक एकत्व का स्मरण दिलाना। देह का मिटा देने की आवश्यकता

नहीं है। इसे शुद्ध करके आध्यात्मिक बनाने की आवश्यकता है। इस आत्मा का सहायक बनाना चाहिये बाधक नहीं। यह एक धातु की भाँति है, जिसे अग्नि में तपाकर रूपान्तरित करना होता है। शेख़ (गुरु) साधक को यह बताता है कि इस रूपान्तरण प्रक्रिया का भेद वह जानता है। वह कहता है, "हम तुम्हें आध्यात्मिक आवेग की अग्नि में डाल देंगे और तुम शुद्ध और तपे हुये निकलोगे।"

४—बौद्ध धर्म

ग्यारहवीं शताब्दी में भारत पर मुसलमानों की विजय के पूर्व बुद्ध भगवान की शिक्षाओं का पूर्वी फ़ारस और ट्रान्सोक्सेनिया में काफ़ी प्रभाव था। प्राचीन बैक्ट्रिया के मुख्य नगर बल्ख में बड़े उन्नत बौद्ध विहार थे। यह नगर इसमें बसने वाले सूफ़ियों की अधिक संख्या के कारण प्रसिद्ध है। प्रोफ़ेसर गोल्डज़िहर ने एक महत्वपूर्ण घटना की ओर ध्यान आकर्षित किया है। वह यह है कि सूफ़ी साधक इब्राहिम इब्न आदम को मुस्लिम गाथा में बल्ख का राजकुमार बताया गया है। वह सिंहासन त्याग कर रमता योगी बन गया था। उसके रूप में बिल्कुल बुद्ध की ही कथा दुहराई गई है। सूफ़ियों ने माला का प्रयोग बौद्ध भिक्षुओं से ही सीखा। जहाँ तक आत्म निर्माण, योगिक ध्यान, बुद्धि और मन के एकीकरण का सम्बन्ध है, बिना विस्तार में गये, यह बात दावे के साथ कही जा सकती है कि सूफ़ीमत बहुत कुछ बौद्ध धर्म का ऋणी है। किन्तु जिन रूपों में दोनों धर्म समान हैं, वे ही उनके मौलिक अन्तर को भी प्रकट करते हैं। भावना में वे एक दूसरे से दो ध्रुवों के समान दूर हैं। बौद्ध अपने को नैतिक बनाता है किन्तु सूफ़ी केवल पर मात्मा के ज्ञान और प्रेम द्वारा नैतिक बनता है।

मेरा विचार है कि सूफ़ियों की 'फ़ना' अर्थात् व्यक्तिगत अहं को विश्वव्यापी सत्ता में लय कर देने की कल्पना का मूल स्रोत निश्चय ही भारतीय है। 'फ़ना' का प्रथम महान् व्याख्याकार ईरानी रहस्यवादी

बायज़ीद बुस्तामी था, जिसने इसे अपने शिक्षक अबू अली सिन्धी से पाया होगा। उसके कुछ कथन इस प्रकार हैं—

"संसार के प्राणी बदलती हुई दशाओं (अहवाल) के दास होते हैं किन्तु ज्ञानी का कोई 'हाल' नहीं होता क्योंकि उसके अवशेष और सत्व दूसरे के सत्व द्वारा नष्ट कर दिये जाते हैं और उसके पद चिह्न दूसरे के पद चिह्नों में लुप्त हो जाते हैं।"

'तीस वर्ष तक परमात्मा ही मेरा दर्पण था अब मैं स्वयं अपना दर्पण हूँ।" अर्थात् उसकी जीवनी के लेखक की व्याख्यानुसार, "जो कुछ मैं पहले था, अब नहीं हूँ क्योंकि 'मैं' और 'परमात्मा' की मानना अपना परमात्मा के एकत्व को खंडित करना है। चूँकि अब मैं नहीं रह गया हूँ, परमात्मा स्वयं अपना दर्पण है।"

"मैं परमात्मा से परमात्मा में गया, यहाँ तक कि वे मेरे भीतर से चिल्ला उठे, 'तू ही मैं है'!"

मानना पड़ेगा कि यह बौद्ध धर्म नहीं, वरन् वेदान्त का सर्वात्मवाद है। हम 'फ़ना' को पूर्ण रूप से निर्वाण के सदृश नहीं मान सकते। दोनों शब्दों का अर्थ व्यक्तिगत सत्ता का लय होना है। किन्तु जहाँ निर्वाण शुद्ध रूप से नकारात्मक है, 'फ़ना' के साथ 'बक़ा' (परमात्मा में अनन्त जीवन) जुड़ी हुई है। दैवी सौन्दर्य के आह्लादपूर्ण चिन्तन में अपने को भूले हुये सूफ़ी की मग्नता 'अर्हत' की भावहीन बौद्धिक निर्मलता और शान्ति के बिल्कुल विपरीत है। मैं इन विपरीत बातों पर इसलिये ज़ोर देता हूँ कि मेरे विचार से इस्लामी विचार धारा पर बौद्ध धर्म का प्रभाव बहुत बढ़ा-चढ़ा कर कहा जाता है। जो कुछ विचार रूप से बौद्ध धर्म से सम्बन्ध रखता है उसकी अपेक्षा भारतीय बौद्ध धर्म का अधिक श्रेय दिया जाता है। सूफ़ियों की 'फ़ना' की कल्पना भी इसका एक उदाहरण है। साधारण मुसलमान बुद्ध के अनुयायियों को मूर्तिपूजक मान कर उनसे घृणा करते थे और यह संभव नहीं था कि वे उनसे वार्तालाप करते। दूसरी ओर मुसलमानों की विजय के लगभग एक हजार वर्ष पहले

स बौद्ध धर्म का प्रभाव बैक्ट्रिया और पूर्वी ईरान में था। अतएव इन क्षेत्रों में सूफीमत के विकास को इसने अवश्य ही प्रभावित किया होगा।

यद्यपि 'फ़ना' अपने निश्शात्मवादी रूप में निर्वाण से मौलिक भिन्नता रखती है, ये शब्द दूसरे ढंगों में इतने समानार्थक हैं कि हम उनको बिल्कुल असम्बद्ध नहीं मान सकते। फ़ना' का एक नैतिक पहलू होता है, जिसमें सभी भावों और इच्छाओं को मिटा देना पड़ता है। दुर्गुणों और उनके द्वारा उत्पन्न दुष्कर्मों को मिटाना तदनुरूप सद्गुणों और सत्कार्यों में सतत् लगे रहने से ही सम्भव बताया जाता है। प्रोफेसर रिज़ डेविड्स द्वारा दी गई निर्वाण की परिभाषा से उसकी तुलना कीजिये—

"मन और हृदय की उस पापपूर्ण, ग्रहणशील अवस्था का अन्त, जो दूसरी ओर महान् धर्मयोग के अनुसार व्यक्ति के नये-नये जीवन का कारण है। यह अन्त मन और हृदय की विपरीत दशाओं का विकास करने से सम्भव है और उन्हीं के साथ चलता है। यह तब पूर्ण होता है जब विपरीत अवस्था प्राप्त हो जाती है।"

धर्म के सिद्धान्त को, जो सूफीमत के लिये विदेशी है, छोड़कर 'फ़ना' और निर्वाण की ये परिभाषायें लगभग अक्षरशः एक दूसरे से मिलती जुलती हैं। और अधिक तुलना करना ग्रन्थ की बात होगी, किन्तु मेरा विचार है कि हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सूफ़ियों का 'फ़ना' का सिद्धान्त किसी हद तक बौद्ध धर्म तथा भारतीय ईरानी निश्शात्मवाद से प्रभावित हुआ था।

प्रत्येक निष्पक्ष अन्वेषक ने विदेशी विचारों को ग्रहण करने की इस्लाम की क्षमता को स्वीकार किया है और सूफीमत का इतिहास इस सामान्य नियम का प्रबल एक उदाहरण है। किन्तु इस तथ्य के पीछे हमें इस सम्पूर्ण प्रश्न का उत्तर नहीं ढूँढना चाहिये, जिसकी विवेचना मैं कर रहा हूँ और न उन विदेशी तत्त्वों को ही सूफीमत मान लेना चाहिये, जिनको इसने अपने विकास के क्रम में ग्रहण किया और पचाया है। यदि

इस्लाम को किसी चमत्कारपूर्ण ढंग से विदेशी धर्मों और दर्शनों के सम्पर्क में आने से रोक भी दिया जाता तो किसी न किसी प्रकार का रहस्यवाद उसके भीतर से ही प्रकट होता, क्योंकि बीज तो वहाँ पहले ही से मौजूद थे। निश्चय ही हम इस दिशा में काम करने वाली भीतरी शक्तियों को अलग नहीं रख सकते, क्योंकि व आध्यात्मिक आकर्षण के नियम के अधीन थीं। ऊपर बताये गये गैर इस्लामी धर्मों की शक्तिशाली विचार धाराओं ने, जो इस्लामी जगत से होकर निकलीं, इस्लाम के भीतर की उन प्रवृत्तियों को उत्तेजना दी, जिन्होंने सूफीमत को विधेयात्मक या निषेधात्मक ढंग से प्रभावित किया। जैसा कि हमने देखा है, सूफीमत का प्रारम्भिक रूप विलास प्रियता और सांसारिकता के विरुद्ध एक सात्त्विक विद्रोह है। बाद में छाये हुये विवेकवाद और सन्देहवाद ने विरोधी आन्दोलनों को जन्म दिया, जिनका आधार आन्तरिक सहज ज्ञान और रागात्मक श्रद्धा थी। एक सनातन-पन्थी प्रतिक्रिया भी उत्पन्न हुई, जिसने अपने समय में बहुत से सच्चे मुसलमानों को रहस्यवादियों की श्रेणी में ला खड़ा किया।

यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि मुहम्मद साहब के सादे और कठोर एकेश्वरवाद पर आधारित धर्म कैसे इन नवीन सिद्धान्तों को सहन कर सका उनसे समझौता करना तो दूर की बात है ! अल्लाह के सर्वश्रेष्ठ व्यक्तित्व का एक अन्तरस्थ हक़ीकत से, जो समस्त विश्व का जीवन और आत्मा है, समन्वय स्थापित करना असम्भव प्रतीत होता है। फिर भी इस्लाम ने सूफीमत को स्वीकार किया है। धर्म-बहिष्कृत किये जाने के बजाय सूफियों को इस्लाम धर्म की संस्थाओं में सुरक्षित स्थान प्राप्त है और 'मुसलमानी सन्तों की कथा' में पूर्वीय विश्वात्मवाद के बड़े-बड़े कारनामे वर्णित हैं।

हमें एक क्षण के लिये क़ुरान की ओर लौटना चाहिये। यह एक ऐसी दृढ़ कसौटी है, जिस पर कस कर प्रत्येक मुसलमानी सिद्धान्त और नियम को सिद्ध करना अत्यन्त आवश्यक है। क्या रहस्यवाद के कोई

अंकुर वहाँ पाये जाते हैं। जैसा कि मैंने कहा है कुरान का प्रारम्भ इस धारणा के साथ होता है कि अल्लाह 'एक, अनन्त (नित्य) और सब शक्तिमान्' है वह मनुष्यों की भावनाओं और आशाओं से बहुत ऊपर है वह अपने दासों का स्वामी है, न कि अपने बच्चों का पिता वह ऐसा न्यायाधीश है जो पापियों को कठोर दण्ड देता है और अपनी कृपा केवल उन लोगों पर करता है जो निरन्तर भक्ति के साथ एवं पश्चत्ताप करते हुये और विनम्रता दिखाते हुये उसके क्रोध से बचते रहते हैं। वह *प्रेम से अधिक भय का देवता है।* मुहम्मद साहब की शिक्षाओं का यह एक पहलू है और निश्चय ही सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। किन्तु जहाँ उन्होंने संसार और अल्लाह के बीच में एक अपार खाई बना दी, वहीं उनका आन्तरिक सहज ज्ञान आत्मा के समक्ष अल्लाह के प्रत्यक्ष प्रकटी करण के लिये लालायित है। अनुभूति के वर्ग शास्त्र में कोई नियमतायें नहीं हैं। मुहम्मद साहब, जिनमें रहस्यवादी होने का कुछ न कुछ अंश विद्यमान था, अल्लाह को दूर और निकट, सबसे ऊपर और अन्तरस्थ, दोनों अनुभव करते थे। बाद के रूप में अल्लाह पृथिवी और स्वर्ग का प्रकाश है वह ऐसी सत्ता है जो संसार में और मानव आत्मा में कार्यरत है।

"यदि मेरे बन्दे तुमसे मेरे बारे में पूछें तो उनसे कहो कि मैं निकट ही हूँ[1]।" (कुरान २ १८२)। "हम (अल्लाह) उसकी गर्दन की नस से भी अधिक उसके समीप हैं[2]" (कुरान ५०, १५)। "और पृथ्वी में सच्चे ईमान वालों के लिये संकेत मौजूद हैं और स्वयं तुममें भी। क्या तुम नहीं देखते हो[3]?" (कुरान ५१, २० २१)।

१—"व इज़ा सअलाका एबादी अन्नी फ़इन्नी क़रीब।"
—कुरान २, १८२

२—"नह्नो अक़रबो इलैह मिन हबलिल् वरीद।"
—कुरान ५०, १५

३—"व फ़िल आयातुन लिल् मूक़िनीन व फ़ी अनफ़ुसिकुम् अफ़ला तुबसीरून ?"
—कुरान ५१, २० २१

उनके हृदय उतरने में बहुत समय लग गया। मुसलमानों की चेतना ने, जो आन वाले क़हू (परमात्मा के तीव्र क्रोध) के भयंकर काल्पनिक दृश्य से ग्रस्त थी, बहुत धीरे धीरे और बहुत कष्ट के साथ इन मुक्ति दायक विचारों का अर्थ समझा।

जिन आयतों को मैंने उद्धृत किया है, वे एकाध ही नहीं हैं। समग्र रूप से क़ुरान रहस्यवाद के लिये चाहे कितनी ही अनुपयुक्त हो, मैं इस विचार से सहमत नहीं हो सकता कि इसमें इस्लाम की रहस्यवादी व्याख्या के लिये कोई आधार नहीं मिलता। सूफ़ियों ने इसकी विशद व्याख्या की उन्होंने क़ुरान का वैसे ही अर्थ लगाया जैसे फ़िलो ने पेण्टाट्यूश का। किन्तु वे धार्मिक मुसलमानों की बहुसंख्या को अपनी ओर मिलाने में इतने पूर्णरूप से सफल न होते यदि सनातन पंथ के उत्साही अधिवक्ताओं ने एक ऐसी विद्या सम्बन्धी दर्शन-पद्धति की रचना न प्रारम्भ कर दी होती, जिसने दैवी प्रकृति को शुद्ध रूप से एक औपचारिक अपरिवर्तनीय और पूर्ण इकाइ, सभी प्रेमों और आवेगों से रहित एक संकल्प मात्र, तथा एक महान् और अगम्य शक्ति में, जिससे कोई मानव प्राणी कोई सम्पर्क नहीं रख सकता या वार्तालाप नहीं कर सकता, परिवर्तित कर दिया। यही मुसलमानी धर्मशास्त्र का परमात्मा है। सूफ़ीमत का यही निष्कर्ष था। जैसा कि इस विषय पर हमारे अधिकारी विद्वान् प्रोफ़ेसर डी० बी० मैक्डानल्ड ने कहा है, "सभी चिन्तनशील धार्मिक मुसलमान रहस्यवादी होते हैं और सभी सर्वात्म वादी भी होते हैं किन्तु कुछ ऐसे हैं जो इसे नहीं जानते।"

अलग अलग सूफ़ियों का इस्लाम से सम्बन्ध पूर्णाधिक पूर्ण अनुरूपता से लेकर केवल नाममात्र का अल्लाह और उसके पैग़म्बर में विश्वास प्रकट करने तक भिन्न भिन्न रूपों में होता है। जब कि 'क़ुरान और 'हदीस' सामान्यत धार्मिक सत्य के अपरिवर्तनीय मापदण्ड माने
" इस मानने में किसी बाहरी सत्ता की मान्यता नहीं सम्मिलित
है निर्णय पर सब कि क्या सनातन-पंथी है और क्या 'कुफ्र'

है। सूफ़ियों के विचार से धर्मों और प्रश्नोत्तरियों का कोई महत्व नहीं है। वह इनसे सम्बन्ध ही क्यों रक्खे जबकि वह सीधे परमात्मा से प्राप्त सिद्धान्त का अधिकारी है? जैसे ही वह कुरान का पाठ मनोयोग, ध्यान और तल्लीनता के साथ करता है, उस पवित्र वचन के गुप्त अर्थ, जो अनन्त और अथाह होते हैं, उसके अन्तःचक्षु के समक्ष चमक उठते हैं। इस सूफ़ीगण 'इस्तिम्बात' या एक प्रकार का सहज ज्ञान द्वारा अनुमान कहते हैं। यह, पश्चात्ताप द्वारा शुद्ध किये और परमात्मा के चिन्तन से परिपूर्ण हृदयों में, परमात्मा द्वारा प्रकट किये गये ज्ञान का रहस्यमय अन्तःप्रवाह और उस ज्ञान का, व्याख्या करने वाली वाणी से, बहिःप्रवाह है। 'इस्तिम्बात' द्वारा प्रमाणित सिद्धान्त स्वभावतः इस्लामी धर्मशास्त्र या एक दूसरे से पूर्ण रूप से मेल नहीं खाते, किन्तु इस मतभेद की व्याख्या आसानी से हो जाती है। शब्दों की व्याख्या करने वाले धर्मशास्त्रियों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे उन्हीं निष्कर्षों पर पहुँचेंगे जिन पर आत्मा की व्याख्या करने वाले रहस्यवादी पहुँचते हैं और यदि दोनों वर्गों का आपस में मतभेद है तो यह विधान की कृपापूर्ण व्यवस्था ही है, क्योंकि धर्मशास्त्र सम्बन्धी विवाद धर्म की त्रुटियों को दूर करता है और रहस्यवादी सन्त की विभिन्न रहस्यवाद की अनुभूतियों की अनेक रीतियों और स्तरों से मेल खाती है।

आने वाले अध्याय में मैं सूफ़ियों की नियमानुकूल धर्म के प्रति प्रवृत्ति का अधिक विस्तार से वर्णन करूँगा। यह कहना कि उनमें से अनेक बहुत अच्छे मुसलमान थे, अनेक मुश्किल से मुसलमान थे और एक तीसरी संख्या, जो सम्भवतः सबसे बड़ा था, ऐसे लोगों की थी जो कहने भर को मुसलमान थे, इस विषय का एक मोटा भाग निरूपण देना है। प्रारम्भिक मध्ययुग में इस्लाम एक प्रगतिशील संगठन था और धीरे धीरे यह विभिन्न आन्दोलनों के प्रभाव के अन्तर्गत, जिनमें सूफ़ीमत भी एक था, रूपान्तरित हो गया। सनातन-पन्थी इस्लाम का वर्तमान रूप बहुत कुछ ग़ज़ाली की देन है और ग़ज़ाली एक सूफ़ी था। उसके पहले

और उदाहरण से इस्लाम की सूफीमतानुसार व्याख्या ने विवेक और परम्परा के विरोधी वादों में बहुत कुछ सामञ्जस्य स्थापित किया। किन्तु ठीक इसी कारण वह उस विद्यार्थी के लिये, जो यह जानना चाहता है कि सूफीमत तत्वत क्या है शुद्ध प्रकार के रहस्यवाद की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण है।

यद्यपि इस विषय पर प्राप्त अरबी और फारसी के ग्रन्थों में दी गई सूफीमत की अनेक परिभाषायें ऐतिहासिक दृष्टि से रोचक हैं, फिर भी उनका मुख्य महत्व यह बताने में है कि सूफीमत की परिभाषा नहीं हो सकती। जलालुद्दीन रूमी ने अपनी 'मसनवी' में एक हाथी के बारे म एक कहानी कही है जिसे कुछ हिन्दू एक अँधेरे कमरे में प्रदर्शि कर रहे थ। उसे देखने को बहुत से लोग जुटे किन्तु जगह के अत्यधि अन्धकारमय होने के कारण वे उसे देख नहीं सकते थे। अतएव उन्हें उसे अपने हाथों से टटोल कर यह जानना चाहा कि वह किस प्रक। था था। एक ने उसकी सूँड़ टटोली और कहा कि यह जानवर पानी क नल के समान था, एक दूसरे ने उसके कान टटोले और कहा कि यह अवश्य ही एक बड़ा पंखा था। तीसरे ने उसके पैर टटोले और कहा कि यह अवश्य ही एक खम्भा था और चौथे ने उसकी पीठ टटोली और घोषणा की कि वह जानवर एक बड़े सिंहासन के समान था। सूफीमत की परिभाषा करने वालों की भी यही दशा होती है। वे वही अभिव्यक्त करने की चेष्टा कर सकते हैं, जो उन्होंने स्वयं अनुभव किया है और कोई भी ऐसा कल्पनीय सूत्र नहीं है जिसमें प्रत्येक प्रकार की व्यक्तिगत और निकटतम धार्मिक अनुभूतियों का समावेश हो सके। चूँकि ये परिभाषायें सूफीमत की कुछ विशिष्टताओं और उसके कुछ पहलुओं पर सुगम और संक्षिप्त प्रकाश डालती हैं, कुछ उदाहरण दिये जा सकते हैं।

'सूफीमत यह है कि सूफी द्वारा ऐसे कार्यों का प्रतिपादन हो, जो केवल परमात्मा को ही ज्ञात हो और वह सदैव परमात्मा के संग में उस ?ग से रहता हो, जो केवल परमात्मा को ही ज्ञात हो।''

"सूफ़ीमत पूर्ण रूप से आत्मानुशासन है।"

'न किसी वस्तु का अधिकारी होना और न किसी वस्तु के अधिकार में होना ही सूफ़ीमत है।"

"सूफ़ीमत नियमों और शास्त्रों से बनी हुई कोई प्रणाली नहीं है बल्कि एक नैतिक अवस्था है। अर्थात् यदि यह एक नियम होता तो शिक्षा द्वारा ग्रहण किया जा सकता। किन्तु इसके विपरीत यह एक अवस्था (स्वभाव) है, इस कथन के अनुसार कि 'अपने को परमात्मा की नैतिक प्रकृति के अनुसार बनाओ' और परमात्मा की नैतिक प्रकृति नियमों द्वारा या शास्त्रों द्वारा नहीं प्राप्त की जा सकती।"

"स्वतन्त्रता और उदारता तथा आत्म निग्रह का अभाव ही सूफ़ीमत है।"

"सूफ़ीमत यह है कि परमात्मा तेरे द्वारा तेरे अहं का मरण कर तुझे अपने में वास कराये।"

"दृश्यमान् जगत् की अपूर्णता को देखना और जो सभी अपूर्णता से परे है उस परमात्मा के चिंतन में प्रत्येक अपूर्ण वस्तु से आँख मूँद लेना ही सूफ़ीमत है।"

"मानसिक शक्तियों को नियन्त्रण में रखना और श्वासों पर ध्यान देना (प्राणायाम) ही सूफ़ीमत है।"

'जो कुछ तेरे मस्तिष्क में हो उसे निकाल डालना, जो कुछ तेरे हाथ में हो उसे दे देना और जो कुछ भी तुझ पर घटित हो उससे पीछे न हटना ही सूफ़ीमत है।"

पाठक देखेंगे कि सूफ़ीमत एक विभिन्न अर्थों को मिलाने वाला एक शब्द है और इसकी मुख्य रूप रेखाओं का चित्रण करने में व्यक्ति को एक प्रकार का सम्पूर्ण चित्र ही बनाना पड़ता है, जो किसी एक ही पद्धति का प्रतिनिधित्व नहीं करता। सूफ़ियों का कोई मत नहीं है। उनकी कोई नियमबद्ध प्रमाणित प्रणाली नहीं है। उनके 'तरीके' या पथ, जिनके द्वारा वे परमात्मा को खोजते हैं, संख्या में उतने ही हैं

जितनी मनुष्यों की आत्मायें। उनमें अनन्त वैषम्य है, यद्यपि उन सब में एक पारिवारिक समानता ढूँढ़ी जा सकती है। ऐसे बहुरूपी दृश्य के वर्णन निश्चय ही एक दूसरे से अत्यधिक भिन्न होंगे और प्रत्येक दशा में उत्पन्न प्रभाव बहुमुखी सम्पूर्ण के इस या उस पहलू को दिये गये महत्व तथा पदार्थों के चुनाव पर निर्भर होगा। सूफीमत के सार-तत्व का सर्वोत्तम प्रदर्शन इसके सर्वोत्कृष्ट प्रकार में होता है, जो तापसी और भक्तिमय होने की अपेक्षा निश्चयात्मवादी और चिन्तनशील अधिक है। अतएव इस प्रकार को मैंने विशेष उद्देश्य से अग्रभूमि में रक्खा है। क्षेत्र को सीमित करने का लाभ काफी स्पष्ट है किन्तु इससे अनुपात भी कुछ कम और सीमित हो जायगा। मुसलमानी रहस्यवाद के बारे में समुचित मत स्थिर करने के लिये अगले अध्यायों के साथ एक ऐसा उपयुक्त चित्र होना चाहिये जो विशेष रूप से उन आधुनिक प्रकारों से लिया गया हो जिन्हें मैंने स्थानाभाव के कारण अनुचित ढंग से छोड़ दिया है।

प्रथम अध्याय

पथ

प्रत्येक जाति एवं धर्म के रहस्यवादियों ने आध्यात्मिक जीवन की प्रगति का वर्णन यात्रा अथवा तीर्थाटन के रूप में किया है। इस उद्देश्य के लिए अन्य प्रतीकों का भी प्रयोग किया गया है किन्तु यह प्रतीक अपने क्षेत्र में लगभग विश्वव्यापी सा प्रतीत होता है। ईश्वर की खोज में निकलने वाला सूफ़ी अपने को 'सालिक' (यात्री अथवा साधक) कहता है। वह एक 'तरीक़त' (पथ) पर धीरे धीरे उच्च सोपानों (मक़ामात) से होता हुआ अपने लक्ष्य हक़ अथवा ब्रह्म में लीन होने तक (फ़ना-फ़िल्-हक़) आगे बढ़ता है। यदि वह अपने आन्तरिक उत्थान का नक़्शा बनाने का प्रयत्न करे तो इस नक़्शे एवं पूर्ववर्ती अन्वेषकों के नक़्शों में पूर्ण साम्य नहीं मिलेगा। प्रारम्भिक काल में सूफ़ी गुरुओं ने पूर्वानुभव के ऐसे नक़्शे या मापदण्ड श्रमपूर्वक बनाए किन्तु नियमबद्ध करने की दुर्भाग्यपूर्ण मुस्लिम परिपाटी ने उसमें पीछे से बहुत कुछ जोड़ दिया। पथ का विस्तृत वर्णन 'किताब अल-लुमा' के लेखक ने अपनी पुस्तक में किया है, जो कि सम्भवतः हमारे पास सूफ़ीमत पर सबसे प्राचीन एवं सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थ है। इसके अनुसार पथ में अधोलिखित सात विश्रामस्थल होते हैं और इस क्रम में (प्रथम को छोड़कर) प्रत्येक अपने पूर्वगामी सोपान का परिणाम होता है। (१) पश्चात्ताप, (२) संयम, (३) विराग, (४) दैन्य, (५) धैर्य (६) खुदा में विश्वास और (७) सन्तोष—ये सोपान सूफ़ी के यौगिक एवं नैतिक अनुशासन के अंग हैं और इनका भेद 'दशाओं' (अहवाल, हाल शब्द का बहुवचन) से जिनकी मनोवैज्ञानिक शृंखला भी इसी प्रकार की है, बहुत सावधानी

से समझ लेना चाहिए। जिस लेखक का उल्लेख मैंने ऊपर किया है उसने दस दशाएँ गिनाई हैं। वे हैं —ध्यान, खुदा से सामीप्य, प्रेम, भय, आशा, औत्सुक्य, मैत्री, शान्ति, चिन्तन एवं निश्चयात्मकता। जबकि सोपानों की प्राप्ति एवं उनका पूर्ण ज्ञान स्वयं अपने ही प्रयत्न से सम्भव है, दशाएँ आध्यात्मिक भावनायें एवं प्रवृत्तियाँ हैं, जिन पर मनुष्य का कोई नियंत्रण नहीं है।

"ये परमात्मा से मनुष्य के हृदय में अवतरित होती हैं और वह न तो उन्हें आने से रोक सकता है और न जाने से ही।"

सूफी का पथ उस समय तक समाप्त नहीं होता, जब तक कि वह सभी सोपानों (मक़ामात) को पार न कर ले और उनमें से प्रत्येक में आगे बढ़ने से पूर्व अपने को निपुण न बना ले तथा यह अनुभव न कर ले कि ख़ुदा (परमात्मा) ने उसे कौन कौनसी दशाएँ प्रदान करने की कृपा की है। केवल तभी वह चेतना के उस उच्च स्तर पर स्थायी रूप से उठता है, जिसको सूफी लोग 'मारफ़त' (ब्रह्मज्ञान) तथा 'हक़ीक़त' (सत्य) कहते हैं। इस स्तर पर 'तालिब' (अन्वेषक अथवा साधक) 'आरिफ' ज्ञानी) हो जाता है और उसे बोध हो जाता है कि ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय एक ही हैं।

सूफी के अपने अन्दर तक पहुँचने के ढंग के बाहरी ढाँचे का यथा सम्भव संक्षिप्त एवं स्थूल वर्णन करके अन्त में उसकी आन्तरिक प्रक्रियाओं का भी कुछ विवरण देने का प्रयास करूँगा। प्रस्तुत अध्याय में निर्गुण यात्रा (पथ ब्रह्मज्ञान तथा सत्य) जिनके द्वारा सत्यान्वेषण का प्रतीकात्मक वर्णन किया जाता है, के प्रथम भाग का वर्णन किया गया है।

पश्चाताप—सोपानों की प्रत्येक सूची में प्रथम स्थान 'तौबत' (पश्चाताप) का है। यह धर्म परिवर्तन का मुसलमानी पर्याय है और एक नए जीवन का आरम्भ लक्षित करता है। विख्यात सूफ़ियों की जीवन कथाओं में स्वप्नों, प्रतिभासित दृश्यों, नादों तथा अनुभवों का, जिनसे उन्हें पथ में प्रविष्ट होने की प्रेरणा मिली, आमतौर से वर्णन किया गया

है। ये अभिलेख कितने ही नगण्य क्यों न प्रतीत हों, इनका एक मनोवैज्ञानिक आधार है और यदि ये प्रामाणिक हैं तो विस्तृत अध्ययन के योग्य हैं। पश्चात्ताप को अचेतनता रूपी निद्रा से जागना कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि पापी अपने पापपूर्ण कार्यों से सचेत हो जाता है और अपनी विगत अवज्ञा के प्रति पश्चात्ताप अनुभव करता है। यदि वह जिन पापों से अभिज्ञ है उनका तुरन्त परित्याग नहीं करता और यह दृढ़ प्रतिज्ञा नहीं करता कि भविष्य में इन पापों का कभी पुनर्ग्रहण नहीं करेगा, तो वह सच्चा अनुतापी नहीं है। यदि वह अपनी प्रतिज्ञा निभाने में निष्फल रहे तो उसे पुन उस खुदा (परमात्मा) की शरण लेनी चाहिये, जिसकी दया असीम होती है। एक प्रसिद्ध सूफी स्वाया रूप से पश्चात्ताप करने के पूर्व सत्तर बार पश्चात्ताप करके सत्तर बार पुन पापों में लिप्त हुआ। नवदीक्षित को भी अपने द्वारा हानि पहुँचाये हुए लोगों को यथाशक्ति सन्तुष्ट करना चाहिये। ऐसे प्रायश्चित्त के अनेक उदाहरण 'मुस्लिम सन्तों की गाथा' से एकत्र किए जा सकते हैं।

उक्त रहस्यवादी सिद्धान्त के अनुसार पश्चात्ताप शुद्ध रूप से एक ईश्वरीय वरदान है, जो परमात्मा से मनुष्य को प्राप्त होता है, न कि मनुष्य से परमात्मा को। किसी ने राबिया से कहा—

"मैंने बहुत से पाप किये हैं। यदि मैं पश्चात्ताप करता हुआ ईश्वर की शरण में जाऊँ तो क्या वह मेरे ऊपर दया करेगा?" उसने उत्तर दिया, "नहीं, बल्कि यदि वह तुम पर दया करेगा तो तुम उसकी ओर उन्मुख होगे।"

पश्चात्ताप के बाद पापों को भुला देना चाहिये अथवा याद रखना चाहिये—यह प्रश्न सूफी नीति शास्त्र में एक मूलभूत तथ्य पर प्रकाश डालता है। मेरा तात्पर्य उस अन्तर से है जो नवदीक्षितों और शिष्यों को दी गई शिक्षा तथा सिद्धों द्वारा माने गए गुप्त सिद्धान्त में होता है। कोई भी मुसलमान आध्यात्मिक निर्देशक (गुरु) अपने शिष्यों से यही

बतायेगा कि अपने पापों पर नम्रता एवं पश्चात्ताप पूर्वक विचार करना ही अध्यात्मजनित अभिनय की परमौषधि है। किन्तु उसका स्वयं यह दृढ़ विश्वास होता है कि वास्तविक पश्चात्ताप परमात्मा के सिवाय प्रत्येक वस्तु को भुला देने में ही होता है।

हुजवीरी का कथन है कि, 'अनुतापी खुदा (परमात्मा) का प्रेमी होता है और परमात्मा का प्रेमी परमात्मा के चिन्तन में मग्न रहता है, चिन्तनावस्था में पाप का स्मरण अनुचित है क्योंकि पाप का स्मरण परमात्मा एवं चिन्तनकर्ता के मध्य एक पर्दा है।"

पाप का सम्बन्ध खुदी (स्वसत्ता) से है, जो कि स्वयं सबसे बड़ा पाप है। पाप को भूलना अपनत्व को भूलना है।

जैसा कि कहा जा चुका है, यह उस सिद्धान्त का, जो सूफीमत की सम्पूर्ण नीति दर्शन में व्याप्त है और जिसका पूर्ण वर्णन अगले अध्याय में होगा, एक व्यवहार मात्र है। इसके प्रतरे भी प्रकट हैं, किन्तु हमें ईमानदारी से यह मान लेना चाहिये कि आचरण विषयक एक ही सिद्धान्त उन व्यक्तियों के लिए जिन्होंने नैतिक अनुशासन में अपने को निपुण बना लिया है तथा उन लोगों के लिये जो अभी पूर्णत्व की उपलब्धि हेतु प्रयत्नशील हैं, समान रूप से उपयुक्त नहीं हो सकता। पश्चात्ताप के मुख्य द्वार पर यह लिखा हुआ है —

"यहाँ प्रवेश करने वालो! अपने सम्पूर्ण अपनत्व का परित्याग कर दो।"

शेख—अब नवदीक्षित उस मार्ग पर चलता है जिसे ईसाई रहस्यवादी 'शुद्धि मार्ग' कहते हैं। यदि वह सामान्य नियमों का अनुसरण करता है तो उसे एक निर्देशक (शेख, पीर, मुरशिद) अर्थात् गंभीर ज्ञान एवं परिपक्व अनुभव वाले ऐसे पवित्र व्यक्ति की शरण लेनी पड़ती है जिसका प्रत्येक शब्द अपने शिष्य के लिये आखिरी कानून (ब्रह्मवाक्य) होता है। जो साधक बिना सहायता लिए पथ का पार करने की चेष्टा

करता है उसे कोई सद्भावना नहीं प्राप्त होती। ऐसे साधक के लिये कहा जाता है कि शैतान ही उसका मार्ग निर्देशक होता है और उसकी उपमा उस वृक्ष से दी जाती है जिसमें माली द्वारा देख रेख के अभाव में कोई फल नहीं लगते अथवा कड़वे फल लगते हैं। सूफी शेखों के बारे में बताते हुये हुजवीरी कहता है—

"जब कोई नवशिष्य सन्यास ग्रहण करने के उद्देश्य से उनका साथ पकड़ता है तो वे तीन वर्षों की अवधि तक उसे आध्यात्मिक अनुशासन में रखते हैं। यदि वह इस अनुशासन में खरा उतरता है तब तो ठीक है, नहीं तो वे घोषित कर देते हैं कि वह 'पथ' में प्रविष्ट नहीं किया जा सकता। उसे प्रथम वर्ष में जनसाधारण की सेवा में तथा द्वितीय वर्ष में परमात्मा की सेवा में संलग्न रहना पड़ता है। तृतीय वर्ष में उसे स्वयं अपने हृदय की चौकसी करनी पड़ती है। जनसाधारण की सेवा वह तभी कर सकता है जब वह अपने को सेवक तथा अन्य सभी व्यक्तियों को स्वामी की श्रेणी में रखे, अर्थात् उसे सभी को, बिना किसी अपवाद के, अपने से उत्तम समझना चाहिये तथा सब की समान भाव से सेवा करना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिये। और ईश्वर की सेवा वह तभी कर सकता है जब वह अपने वर्तमान या भावी जीवन सम्बन्धी सभी स्वार्थपूर्ण हितों को समाप्त कर दे और ईश्वरोपासना केवल ईश्वर भक्ति के लिये ही करे, क्योंकि किसी वस्तु की इच्छा से परमात्मा की उपासना करने वाला स्वयं अपनी उपासना करता है, न कि परमात्मा की। अपने हृदय की चौकसी वह तभी कर सकता है जब उसके विचार केन्द्रीभूत हो जाँय तथा प्रत्येक चिन्ता दूर हो जाय, ताकि परमात्मा से सम्पर्क स्थापित होने पर वह अज्ञान के आक्रमण से अपने हृदय की रक्षा कर सके। जब ये योग्यताएँ नवशिष्य को प्राप्त हो जाँय तो वह केवल दूसरों का अनुकरणकर्त्ता न होकर एक सच्चे रहस्यवादी की भाँति 'मुरक्कात' (दरवेशों अर्थात् भिक्षुओं द्वारा पहिना जाने वाला पैबन्ददार अँगरखा) धारण कर सकता है।"

'शिब्ली' बग़दाद के प्रसिद्ध थियासोफिस्ट (सूफी, ब्रह्मवादी) 'जुनैद' का एक शिष्य था। नवधर्म ग्रहण करने पर वह एक दिन जुनैद के पास आया और बोला—

"लोग कहते हैं कि 'ईश्वरीय ज्ञान' का मोती तुम्हारे पास है। या तो उसे मुझे दे दो अथवा मेरे हाथ बेच दो।" जुनैद ने उत्तर दिया, "मैं उसे बेच नहीं सकता, क्योंकि तुम्हारे पास उसका मूल्य नहीं है और यदि मैं उसे तुम्हें दे दूँ तो वह तुम्हें बहुत सस्ते में प्राप्त हो जायगा। तुम्हें उसका मूल्य मालूम नहीं है। मेरी भाँति तुम भी इस महासागर में सर के बल कूद पड़ो ताकि धैर्य पूर्वक प्रतीक्षा करके तुम वह मोती प्राप्त कर सको।"

शिब्ली ने पूछा, 'मुझे क्या करना चाहिये।"

"जाकर गंधक बेचो,' जुनैद ने उत्तर दिया।

एक वर्ष समाप्त होने पर उसने शिब्ली से कहा, "इस व्यापार से तुम्हारी अच्छी ख्याति हो गई है। अब तुम दरवेश (भिक्षु) हो जाओ और अपने को केवल भिक्षाटन में ही लगाए रखो।"

पूरे वर्ष भर शिब्ली बग़दाद की गलियों में घूम-घूम कर राहगीरों से भिक्षा माँगता रहा, किन्तु किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया। तब वह लौट कर जुनैद के पास आया, जिसने उच्च स्वर से कहा—

"अब देखो! तुम लोगों की निगाह में कुछ नहीं रहे। कभी भी अपने मन पर उनकी ओर न ले जाओ अथवा उनकी किसी बात पर तनिक भी ध्यान न दो।" वह कहता ही गया, "कुछ समय तक तुम एक दीवान के और एक प्रान्त के शासक के रूप में तुमने कार्य किया था। उस प्रदेश में जाओ और उन सब लोगों से, जिनका तुमने अपकार किया है, क्षमायाचना करो।"

शिब्ली ने आज्ञा का पालन किया और चार वर्षों तक द्वार-द्वार रहा। यहाँ तक कि उसने प्रत्येक व्यक्ति से, सिवाय एक के जिसका

पता यह न लगा सका, क्षमा प्राप्त कर ली। लौटने पर जुनैद ने उससे कहा—

"अब भी तुम्हारे मन में कीर्ति के लिये कुछ स्थान है। जाओ एक वर्ष तक और भिक्षा माँगो।"

प्रत्येक दिन शिबली जो कुछ भिक्षा पाता लाकर जुनैद को दे देता वह उस भिक्षा को गरीबों को प्रदान कर देता और शिबली को दूसरे दिन प्रात काल तक निराहार ही रखता। जब इस प्रकार एक वर्ष बीत गये तो जुनैद ने उसे अपने शिष्यों में इस शर्त पर लेना स्वीकार किया कि वह दूसरों की सेवा का कार्य करे। एक वर्ष की सेवा के पश्चात् जुनैद ने उससे पूछा—

"अब तुम अपने बारे में क्या सोचते हो?"

शिबली ने उत्तर दिया, "ईश्वर द्वारा पैदा किये गये सभी प्राणियों में मैं अपने को सबसे तुच्छ समझता हूँ।"

गुरु ने कहा, "अब तुम्हारा ईमान (धर्म में विश्वास) पक्का हो गया।"

सूफ़ी इस प्रशिक्षण के—उपवास, रात्रि जागरण, मौनव्रत, दीर्घ काल तक एकान्त में रात दिन ध्यानावस्थित रहना, सदानन अपने अस्तित्व से लड़ने के समस्त शस्त्रों एवं युक्तियों का, जिन्हें पैग़म्बर ने 'जिहाद' (धर्म युद्ध) से भी अधिक कष्टदायक एवं श्रेष्ठ बतलाया है—विस्तृत वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। दूसरी तरफ मेरे पाठक यह भी आशा करते होंगे कि मैं उन विशिष्ट सिद्धान्तों और अभ्यासों का सामान्य वर्णन करूँ जिनके लिये 'पथ' एक उपयुक्त नाम है। ये निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं—दैन्य, तपस्या, परमात्मा में विश्वास और स्मरण। दैन्य स्वभावतः निषेधात्मक है, जिसमें समस्त सांसारिक और अशाश्वत वस्तुओं से सम्बन्ध विच्छेद करना पड़ता है। इसके विरुद्ध शेष तीनों शब्द उस प्रवृत्ति अर्थात् नैतिक अनुशासन के,

जिसके द्वारा रूह' (आत्मा) या 'हक़' (परमात्मा) से समुचित सम्बन्ध स्थापित होता है, विधेयात्मक प्रतिरूप हैं।

दैन्य—इस्लाम के प्रारम्भिक काल में भाग्यवादी भावना उस पर छाई हुई थी। इस भावना ने कि मनुष्य के सभी कार्य किसी अन्य शक्ति द्वारा निश्चित् किये जाते हैं और वे स्वत: असार एवं व्यर्थ होते हैं, वैराग्य को प्रारम्भिक सूफियों तपश्चर्या का प्रत्यय शब्द बना दिया। प्रत्येक सच्चा धर्मानुयायी नियम विरुद्ध भोगों से परहेज करता है, किन्तु तपस्वी नियमानुमोदित भोगों से भी परहेज करके श्रेष्ठता प्राप्त करता है। प्रारम्भ में वैराग्य केवल भौतिक अर्थ में ही समझा जाता था। यथा यथासम्भव कम से कम सांसारिक वस्तुओं का रखना ही 'नजात' (मोक्ष) प्राप्त करने का सुदृढ़ साधन माना जाता था। दाऊद अल् ताई अपने पास मूँज की एक चटाई, तकिये की भाँति इस्तेमाल करने के लिए एक ईंट तथा पीने एवं स्नान के जल के लिये एक चर्मपात्र के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं रखता था। किसी व्यक्ति ने स्वप्न में देखा कि मालिक-इब्न दीनार तथा मुहम्मद इब्न-वासी स्वर्ग में ले जाये जा रहे हैं तथा मालिक को अपने साथी से पहले ग्रहण किया जा रहा है। वह आश्चर्य से चिल्ला उठा, क्योंकि उसके विचार से मुहम्मद इब्न-वासी अपने साथी की अपेक्षा इस सम्मान के अधिक हक़दार थे। उसको उत्तर मिला, 'हाँ ऐसा ही है, किन्तु मुहम्मद इब्न-वासी के पास दो कमीजें थीं और मालिक के पास केवल एक। इसी कारण मालिक को अधिक प्रतिष्ठा दी गई।"

सूफियों का दैन्य का आदर्श इससे भी बढ़कर है। सच्चा दैन्य केवल सम्पत्ति का अभाव नहीं बल्कि सम्पत्ति की इच्छा का भी अभाव है। अर्थात् हृदय और हाथ दोनों खाली रहने चाहिए। मुसलमान रहस्यवादी का 'फ़क़ीर' (निर्धन) तथा 'दरवेश' (भिक्षु) जैसे नामों से पुकारे जाने का यह अर्थ होता है। यह शब्द यह सूचित करते हैं कि उसने अपने मन को ईश्वर की ओर से हटाने वाले प्रत्येक विचार अथवा इच्छा का परि

पर निर्भर रहता है। अपनत्व का अभाव ही सूफी को फकीर से ऊपर उठाता है।

दरवेशों के लिये कुछ नियम इस प्रकार हैं —

"जब तक तुम क्षुधापीड़ित न हो, भिक्षा मत माँगो। खलीफा उमर ने एक व्यक्ति को, जो अपनी क्षुधा शान्त करने के बाद भी भिक्षा माँगता रहा, कोड़ों से पीटा। भिक्षा माँगने के लिये वाध्य होने पर भी अपनी आवश्यकता से अधिक न ग्रहण करो।"

सुशील और विनम्र बनो तथा अपने दैन्य के लिये ईश्वर को धन्यवाद दो।"

"भिक्षा देने के लिये धना व्यक्तियों की चापलूसी न करो और न देने के लिये उनकी निन्दा भी मत करो।"

"जितना धनी व्यक्ति अपना धन खोने से डरता है उससे अधिक अपना दैन्य खो देने से डरो।"

"जो कुछ स्वेच्छा से दिया जाय, वही ग्रहण करो यही तुम्हारा दैनिक भोजन है जो ईश्वर तुम्हें भेजता है। ईश्वर के दान को अस्वीकार मत करो।"

"कल (भविष्य) की कोई चिन्ता अपने मन में मत आने दो, नहीं तो अनन्त अध पतन के भागी बनोगे।"

"ईश्वर की भिक्षा रूपी चिड़िया पकड़ने का जाल मत बनाओ।"

नफ्स—सूफी गुरुओं ने क्रमश तपस्या और नैतिक उत्कर्ष की ऐसी प्रणाली का निर्माण किया है, जिसका आधार यह तथ्य है कि मनुष्य में बुराई का एक मूल तत्व अर्थात् निम्नतर या लालसापूर्ण आत्मा होती है। यह पापपूर्ण आत्मा, जो प्रेम, क्रोधादि भावों तथा कामेच्छा का निवास स्थान है 'नफ्स' कहलाती है। स्थूल रूप से इसे निरय वासना समझ सकते हैं और अपने मित्रों, संसार और शैतान, की तरह यह परमात्मा से मिलन प्राप्त करने में बहुत बड़ी बाधा उपस्थित करती है। पैगम्बर साहब ने कहा है, "तेरा सबसे बुरा शत्रु तेरा 'नफ्स'

सकता है किन्तु अब हमें उच्चतर नैतिक अनुशासन तक आगे बढ़ चलना चाहिए, जिससे 'पथ' की परिपूर्णता प्राप्त होती है।

जैसा कि ज्ञानवृद्ध सूफ़ियों का विचार है, आत्म-दमन मनुष्य की अन्तरात्मा के नैतिक परिवर्तन को किया है। जब वे कहते हैं कि "अपनी मृत्यु से पहले मरो" तो इसका तात्पर्य यह नहीं होता कि "नफ़्स" (निम्नात्मा) का विनाश आवश्यक रूप से स्वीकार किया जाय वरन् इसका तात्पर्य यह होता है कि 'नफ़्स' को उसकी समस्त विशेषताओं से जो पूर्णतः बुरी होती हैं, शुद्ध कर लिया जाय। ये विशेषताएँ—अज्ञान, अभिमान, ईर्ष्या, अनुदारता आदि—क्षीण हो जाती हैं और इनका स्थान इनके प्रतिकूल गुण ले लेते हैं। किन्तु यह तभी सम्भव है, जब इच्छाएँ परमात्मा को अर्पित कर दी जायँ और मन उस पर केन्द्रीभूत हो जाय। इसलिए 'आत्म दमन' वास्तव में परमात्मा में निवास' करना है। अगले अध्यायों के अधिकांश भाग में ऊपर बतलाए हुये सिद्धान्त के रहस्यवादी पहलू का वर्णन किया जायगा, किन्तु यहाँ हमारा सम्बन्ध मुख्यतः इसके नैतिक तात्पर्य से ही है।

जिस सूफ़ी ने अपनी इच्छाओं को निर्मूल कर दिया हो उसे पारिभाषिक भाषा में 'आनन्दावस्था' अर्थात् 'रिज़ा' (सन्तोष) तथा तवक्कुल' (परमात्मा में विश्वास या भरोसा) के सोपानों पर पहुँचा हुआ कहा जाता है।

एक दरवेश टिग्रिस नदी में गिर पड़ा। उसे तैरने में असमर्थ देख कर किनारे पर से एक आदमी चिल्लाया, "क्या मैं किसी से कह दूँ कि वह तुम्हें किनारे पर निकाल लावे?" "नहीं!" दरवेश ने उत्तर दिया। "तो क्या तुम डूब मरना चाहते हो?" "नहीं!" "तो फिर तुम्हारी क्या इच्छा है?" दरवेश ने उत्तर दिया, "जो ईश्वर की इच्छा होगी, वही होगा। मुझे इच्छा करने से क्या मतलब!"

'तवक्कुल' या परमात्मा पर भरोसा—अपने अन्तिम रूप में 'तवक्कुल' का सम्बन्ध प्रत्येक व्यक्तिगत पहल तथा अग्रगामिता के परि

तुम्हारे विचार और वाणी भ्रष्ट हैं क्योंकि तुम्हारे दूसरों के हेतु कार्य करने का कारण आशा अथवा भय है। और जब तुम सब वस्तुओं के स्वामी तथा आश्रयदाता परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी की आशा या भय से कार्य करते हो तो एक अन्य देवता की उपासना तथा सम्मान का दायित्व अपने ऊपर ले लेते हो।"

'दूसरे यह कि जब तुम इस सच्चे विश्वास के साथ कि सिवाय उसके दूसरा कोई परमात्मा नहीं है, बोलते या कार्य करते हो तो तुम्हें उस पर संसार, सम्पत्ति, चचा, पिता अथवा माता अथवा पृथ्वीतल पर स्थित किसी भी व्यक्ति से अधिक भरोसा रखना चाहिए।

"तीसरे यह कि जब तुम इन दो चीज़ों अर्थात् परमात्मा की एकता में निष्कपट विश्वास तथा उस पर भरोसा रखने में दृढ़ता प्राप्त कर लो, तो तुम्हारे लिये यह योग्य है कि तुम उससे सन्तुष्ट रहो और किसी भी ऐसी बात पर, जो तुमको उद्विग्न करती हो, क्रोध न करो। क्रोध से सावधान रहो। अपने हृदय को सदैव परमात्मा के सन्निकट रखो और उसे एक क्षण के लिये भी परमात्मा से विलग न होने दो।'

'तवक्कुली' को वर्तमान क्षण से आगे अन्य किसी वस्तु का ध्यान नहीं रहता। एक अवसर पर शक़ीक़ ने उन लोगों से, जो बैठे हुये उसका उपदेश सुन रहे थे, पूछा —

"यदि ईश्वर तुम्हें आज काल का ग्रास बना दे तो क्या तुम समझते हो कि वह कल की प्रार्थना का तुमसे तक़ाज़ा करेगा?" उन लोगों ने उत्तर दिया, "नहीं, जिस दिन हम जीवित ही न रहें उस दिन की प्रार्थना का तक़ाज़ा वह हमसे कैसे कर सकता है?" शक़ीक़ ने कहा, "जिस प्रकार वह कल की प्रार्थना का तक़ाज़ा तुमसे नहीं करेगा, ठीक उसी प्रकार तुम भी उससे कल का भोजन मत माँगो। हो सकता है कि तुम इतने समय तक जीवित न रहो।"

'तवक्कुल' पर निर्भर रहने के प्रश्न करने के व्यावहारिक परिणामों को देखते हुये इस सिद्धान्त को पूर्ण रूप से निभाने वालों को दी गई

करने, याद करने अथवा केवल मनन करने से है। क़ुरान में धर्म पर ईमान लाने वालों को आदेश दिया गया है कि "ईश्वर का स्मरण प्रायः करते रहो।" यह उपासना की बहुत साधारण क्रिया है, जिसमें रहस्यवाद की कोई गन्ध नहीं है। किन्तु सूफ़ियों ने अल्लाह का नाम या किसी धार्मिक सूत्र को जपने का नियम बना लिया था, जैसे "सुभ्हान अल्लाह' (परमात्मा की जय हो) "ला इलाह इल्ल् लिल्लाह" (सिवाय परमात्मा के और कोई देवता नहीं है)। वे इन्हें य त्नत् स्वरसहित गाते थे तथा अपनी प्रत्येक मानसिक शक्ति को किसी एक शब्द या शब्द समूह पर सम्पूर्ण रूप से केन्द्रीभूत रखते थे। वे इस अनियमित प्रार्थना को, जो उन्हें परमात्मा से अबाधित मिलन का आनन्द उठाने योग्य बनाती है, पाँच बार की नमाज़ से, जो दिनरात के निश्चित घण्टों पर सब मुसलमानों द्वारा पढ़ी जाती है, अधिक महत्व देते हैं। स्मरण या जप उच्चरित या मौन दोनों प्रकार से हो सकता है किन्तु सामान्य मतानुसार सर्वोत्तम यही है कि मन और वाणी एक दूसरे से सहयोग करें। सहल इब्न अब्दुल्लाह ने अपने शिष्यों में से एक को आदेश दिया कि वह सारे दिन बिना क्षणिक विराम के "अल्लाह! अल्लाह!" कहने का प्रयास करे। जब उसकी ऐसा करने की आदत पड़ गई तब सहल ने उसको उन्हीं शब्दों को रात्रि में उस समय तक जपने का निर्देश दिया जब तक कि सुषुप्तावस्था में भी वे उसके मुख से उच्चरित न होने लगें। 'अब तुम मौन हो जाओ और अपने को उनके स्मरण में लगाए रखो।" अन्ततोगत्वा शिष्य का सारा अस्तित्व परमात्मा के ध्यान में लीन हो गया। एक दिन एक लकड़ी का कुन्दा उसके सिर पर गिर पड़ा और लोगों ने देखा कि घाव से टपकने वाले खून में 'अल्लाह, अल्लाह,' शब्द लिखे हुए हैं।

ग़ज़ाली ने 'ज़िक्र' की रीति और उसके प्रभावों का वर्णन एक अनुच्छेद में किया है, जिसे मक्डानल्ड ने सङ्क्षेप में इस प्रकार लिखा है—

"वह अपने हृदय की ऐसी अवस्था बना दे, जिसमें किसी वस्तु की सत्ता और उसका अभाव उसके लिए समान ही हो। तब वह अपने धार्मिक कृत्यों का अत्यावश्यक कर्तव्यों तक सीमित करके किसी कोने में बैठकर एकान्त-सेवन करे। वह स्वयं को कुरान पढ़ने अथवा उसका अर्थ समझने, धार्मिक परम्पराओं के ग्रन्थों का अध्ययन करने या इस प्रकार की किसी भी बात में न व्यस्त रखे। ध्यान रखना चाहिए कि सिवाय सर्वोच्च परमेश्वर के कोई दूसरी बात उसके मन में न आने पाए। तब वह एकान्त में बैठकर अपनी वाणी से लगातार 'अल्लाह अल्लाह' बिना रुके हुए कहे और अपने विचारों को इसी शब्द पर केन्द्रित रखे। अन्त में वह ऐसी अवस्था को प्राप्त हो जाएगा, जहाँ वाणी की गति रुक जायगी और ऐसा प्रतीत होगा मानो शब्द स्वतः उसकी वाणी से उच्चरित हो रहा है। वह इसका निरन्तर अभ्यास करता रहे, जब तक कि उसकी वाणी से गति के समस्त चिह्न लुप्त न हो जायें तथा वह अपने हृदय को विचारों में निमग्न न पा ले। फिर भी वह तब तक अभ्यास जारी रखे, जब तक कि शब्द का स्वरूप, इसके अक्षर तथा आकृति उसके हृदय से मिट न जाय तथा केवल विचार ही शेष न रह जाय और वह भी इस प्रकार मानो वह हृदय से चिपका हुआ और अविभेद्य है। यहाँ तक तो सब कुछ उसके संकल्प और इच्छा पर निर्भर है किन्तु ईश्वर की दया प्राप्त करना उसकी इच्छा शक्ति या पसन्द में नहीं है। अब उसने स्वयं को उस दया के श्वास प्रश्वास के समक्ष नग्न रूप में छोड़ दिया है और सिवाय यह प्रतीक्षा करने के, कि ईश्वर उस पर क्या प्रकट करता है, जैसा कि ईश्वर ने इसी प्रकार के अभ्यास के पश्चात् पैगम्बरों तथा सन्तों पर किया है, उसे और कुछ करना शेष नहीं रह जाता। यदि वह उपर्युक्त मार्ग से चलता है तो उसे विश्वास रखना चाहिए कि 'हक़' (परमात्मा) की ज्योति उसके हृदय में चमक उठेगी। यह पहले तो विद्युत् की भाँति अस्थिर होगा—कभी प्रकट होगी, कभी अदृश्य और कभी कभी लुप्त रह जाएगी। यदि यह लौट

जाती है तो कभी टिकाऊ होती है और कभी क्षणिक और यदि वह टिकाऊ होती है तो इसका टिकना कभी दीर्घकालीन होता है और कभी अल्पकालीन।"

एक दूसरे सूफी ने इस विषय का सारांश एक ही वाक्य में इस प्रकार कहा है —

"ज़िक्र की पहली सीढ़ी निजत्व का भूलना है और अन्तिम सीढ़ी उपासक का उपासना कार्य में इस प्रकार लुप्त हो जाना है कि उसे उपासना की चेतना ही न रहे और वह उपास्य में ऐसा लवलीन हो जाय कि उसका स्वयं तक लौटना प्रतिबन्धित हो जाय।"

ज़िक्र या स्मरण में विभिन्न उपायों की सहायता ली जा सकती है। जब शिबली एक नौसिखिया था तो वह नित्य छड़ियों का एक गट्ठर लेकर एक तहखाने में घुस जाता था। यदि उसका ध्यान इधर-उधर बहकता तो वह छड़ियों से अपने को उस समय तक पीटता जब तक कि वे टूट न जातीं और कभी कभी तो सारा गट्ठर संध्या से पूर्व ही समाप्त हो जाता और तब वह अपने हाथों और पैरों को दीवार पर पटकता। प्राणायाम की भारतीय विधि भी नवीं शताब्दी के सूफियों को ज्ञात थी और बाद में इसका प्रयोग भी शुरू हुआ। दरवेशों की समान व्यवस्था में सङ्गीत गायन और नृत्य समाधि-दशा प्राप्त करने में अनुकूल साधन माने गये हैं। इस अवस्था को 'फ़ना' (लय हो जाना) कहते हैं और यह, जैसा कि उपयुक्त परिभाषा से प्रकट होता है, इस पद्धति का चरमोत्कर्ष तथा इसके अस्तित्व का मूल कारण है।

मुराक़बत या ध्यान—बौद्ध धर्म में प्रचलित 'ध्यान' और 'समाधि' की भाँति 'मुराक़बत' भी एकाग्रचित्त होने का एक रूप है। जब पैग़म्बर ने यह कहा कि "ईश्वर की उपासना इस प्रकार करो मानो तुमने उसे देखा है क्योंकि यदि तुम उसे नहीं देखते हो तो भी वह तुम्हें देखता है", तो उनका तात्पर्य भी यही था। जिस व्यक्ति का यह विश्वास है कि परमात्मा सदैव उसकी चौकसी करता रहता है वह स्वयं को ईश्वर के

ध्यान में लगाये रक्खेगा और कोई भी बुरे विचार तथा पापपूर्ण सकल्प उसके हृदय में प्रविष्ट नहीं हो सकेंगे। नूरी इतनी दृढ़ता के साथ ध्यान मग्न होता था कि उसके शरीर का एक बाल भी नहीं हिलता था। उसका कहना था कि उसने यह आदत एक बिल्ली से जो एक चूहे के बिल को ताक रही थी, सीखी थी और यह उससे कहीं अधिक शान्त थी। अबूसईद इब्न अलुअरै अपनी दृष्टि अपनी नाभि पर स्थिर लगाये रहता था। कहते हैं कि इस प्रकार ध्यानावस्थित व्यक्ति के निकट आने पर शैतान को अपस्मार रोग हो जाता है ठीक उसी प्रकार जैसे मनुष्य को उस पर शैतान का अधिकार हो जाने पर होता है।

यदि यह अध्याय मेरे पाठकों के समक्ष उन मुख्य रीतियों का, जिनके अनुसार सूफी का प्रारम्भिक प्रशिक्षण चलता है, एक स्पष्ट दृश्य उपस्थित कर सके, तो इसका उद्देश्य पूर्ण हो जायगा। अब हमें यह कल्पना कर लेनी चाहिये कि साधक को उसके 'शेख' (गुरु) ने 'मुरक्कात' अथवा 'खिरक़त' (पैबन्द लगा हुआ अंगरखा) प्रदान कर दिया है, जो इस बात का द्योतक है कि उसने 'पथ' के अनुशासन को सफलता पूर्वक पार कर लिया है और अब वह अनिश्चित पगों से प्रकाश की ओर बढ़ रहा है, ठीक वैसे ही जैसे परिश्रम से थके हुये पथिक गहरी घाटी से निकल कर शिखर पर पहुँचते ही यकायक सूर्य की झलक पाकर अपनी आँखें मूँद लेते हैं।

द्वितीय अध्याय

प्रकाश-प्राप्ति और आह्लाद

ईश्वर, जिसे कुरान में 'पृथ्वी और स्वर्गों का प्रकाश'[1] कहा गया है, शारीरिक चक्षुओं द्वारा नहीं देखा जा सकता। वह केवल हृदय के आन्तरिक चक्षुओं को ही दृष्टिगोचर होता है। अगले अध्याय में हम इस आध्यात्मिक अवयव का पुनः वर्णन करेंगे, किन्तु मैं सूफ़ी मनोविज्ञान की गूढ़ताओं में जितना आवश्यक है उससे अधिक प्रवेश नहीं करूँगा। 'रूयातु-ल-क़ल्ब' (हृदय की दृष्टि) की परिभाषा "हृदय का अदृश्य लोक में छिपी हुई निश्चयात्मकता के प्रकाश को देखना" के रूप में की गई है। जब अली से यह पूछा गया कि "क्या तुम ईश्वर को देखते हो?" और उन्होंने उत्तर दिया कि "जिसे हम देखते नहीं उसकी उपासना कैसे करेंगे?" तो उनका तात्पर्य इसी से था। 'यक़ीन' (अंतर्ज्ञान से प्राप्त निश्चयात्मकता का प्रकाश) जिसके द्वारा हृदय ईश्वर को देखता है यह ईश्वर के स्वप्रकाश की एक किरण है जिसे ईश्वर ने स्वयं हृदय में डाल दिया है अन्यथा उसका कोई भी दृश्य प्रतिभासित होना सम्भव नहीं है।

"सूर्य स्वयं अपने ही प्रकाश में देखा जा सकता है।"

कुरान के प्रसिद्ध अनुच्छेद की, जिसमें अल्लाह की रोशनी की तुलना दीवार के ताक में रखी पारदर्शी शीशे वाली लालटेन के भीतर जलती हुई मोमबत्ती से की गई है, रहस्यवादी व्याख्या के अनुसार यह ताक सच्चे ईमान लाने वाले (धर्मात्मा) का हृदय ही है। अतएव उसकी वाणी प्रकाशयुक्त है, उसके कर्म प्रकाशयुक्त हैं और वह प्रकाश में ही चलता फिरता है। बायज़ीद ने कहा था कि "जो व्यक्ति

1—अल्लाहो नूरुस्समावाति वल अर्द। —कुरान २४

अनन्त (नित्यता) की बातचीत करता है उसे अपने अंत करण में अनन्त का दीपक अवश्य रखना चाहिये।"

ज्ञान प्राप्त रहस्यवादी के हृदय में चमक उठने वाला प्रकाश उसे परीक्षण की अलौकिक शक्ति प्रदान करता है। इसे 'फिरासत' कहते हैं। यद्यपि अन्य सभी मुसलमानों की भाँति सूफी लोग भी मुहम्मद साहब को पैगम्बरों में सब से अन्तिम मानते हैं—(एक भिन्न दृष्टिकोण के अनुसार वह सृष्टि के सर्वप्रथम जीव हैं) तो भी वे वास्तव में प्रेरणा का लघु रूप ही प्राप्त करने का दावा करते हैं। जब नूरी से रहस्यवादी 'फिरासत' उद्भव के बारे में प्रश्न किया गया तो उसने कुरान की उस आयत का उद्धरण देते हुए उत्तर दिया, जिसमें परमात्मा ने कहा है कि "मैने अपनी रूह आदम में फूंकी। किन्तु अधिक कट्टर सूफी जो इन्सान की रूह (आत्मा) के अनादि एवं अनन्त होने के सिद्धान्त का प्रयत्नपूर्वक खण्डन करते हैं उनका निश्चयपूर्वक कथन है कि 'फिरासत' ज्ञान और अन्तर्दृष्टि (निरीक्षण शक्ति) का परिणाम है जिसे लाक्षणिक रूप से प्रकाश अथवा ईश्वरीय प्रेरणा कहा जाता है और जिसे परमात्मा उत्पन्न करके अपने प्रिय भक्त को प्रदान करता है। यह परम्परागत कथन कि, 'सच्चे धर्मात्मा की पैनी दृष्टि से बचो क्योंकि वह अल्लाह के प्रकाश में देखता है" निम्नलिखित उपाख्यान में दृष्टान्त देकर समझाया गया है—

अबू अब्दुल्लाह अल-राज़ी ने कहा, "इब्न अल अनारी ने मुझे एक ऊनी अंगरखा भेंट किया और शिबली के सिर पर एक सिरत्राण देखकर, जो ठीक इसके अनुरूप था, मेरे मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि ये दोनों मेरे ही होते। जब शिबली चलने के लिए उठा तो उसने मेरी ओर दृष्टिपात किया क्योंकि मुझे अपने पीछे पीछे ले चलने के लिए ऐसा करने की, उसकी आदत बन गयी थी। मैं उसके पीछे-पीछे उसके घर तक गया। अन्दर पहुंचने पर उसने मुझे अपना अंगरखा उतार देने की आज्ञा दी। उसने इसे मुझसे लेकर तह किया और अपना शिरस्त्राण इसके

ऊपर फेंक दिया, तब उसने आग मँगवाकर अँगरखा और शिरस्त्राण दोनों को जला दिया।"

सरीउल-सकती बार-बार जुनैद से जनता के बीच भाषण देने का आग्रह किया करता था, किन्तु जुनैद राजी नहीं होता था क्योंकि उसे अपने को ऐसे सम्मान के योग्य होने में सन्देह था। एक शुक्रवार की रात्रि में उसने स्वप्न देखा कि पैगम्बर ने प्रकट होकर उसे जनता के बीच भाषण देने का आदेश दिया। वह जाग उठा और दिन निकलने के पूर्व सरी के घर पहुँच कर उसका दरवाजा खटखटाया। सरी ने द्वार खोलकर कहा "जब तक पैगम्बर स्वयं आकर तुमसे न कहते, तुम मेरी बात का विश्वास न करते।"

सहल इब्न-अब्दुल्लाह जामा मस्जिद में बैठे थे। उसी समय एक कबूतर अत्यधिक गर्मी से पीड़ित होकर फर्श पर गिर पड़ा। सहल ने चिल्लाकर कहा, "खुदा की रहमत, शाह अल किरमानी की अभी अभी मृत्यु होगई है।" लोगों ने इसे लिख लिया और बात सच्ची पायी गयी।

जब हृदय पाप और बुरे विचारों से शुद्ध हो जाता है तो इस पर निश्चयात्मकता का प्रकाश पड़ता है, जो इसे चमकता हुआ स्पंज बना देता है यहाँ तक कि शैतान इसके निकट अनदेखा नहीं आ सकता। इसीलिए किसी ज्ञानमार्गी ने कहा है "मेरा अपने हृदय की प्रशंसा करना परमात्मा की प्रशंसा करना है।" एक ऐसे ही प्रकाशप्राप्त व्यक्ति से पैगम्बर ने कहा था, 'अपने हृदय की सम्मति लो और तुम्हें हृदय के आन्तरिक ज्ञान द्वारा घोषित परमात्मा का शुभ आदेश सुनाई पड़ेगा। यही सच्ची निष्ठा एवं दयत्व है।" यह चीज धर्मोपदेशों को सीखने से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। मुझे आगामी अध्याय में विवेचना किए जाने वाले इस प्रश्न पर पहले से विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि एक अभ्रान्त सद्विवेक के दावों से बाह्य धर्म एवं नैतिकता का कहाँ तक समाधान किया जा सकता है। पैगम्बर (मुहम्मद साहब) भी परमात्मा से यही प्रार्थना

करते थे कि वह उनके कान एवं आँख में प्रकाश डाले। अपने शरीर के समस्त अंगों का नामोच्चारण करके वह अपनी प्रार्थना इस प्रकार समाप्त करते थे, "और मेरा समस्त शरीर एक प्रकाश बना दे।" क्रम से बढ़ते हुए तेज के प्रकाश से रहस्यवादी दैवी गुणों के चिन्तन तक ऊपर उठता है और अन्ततोगत्वा जब उसकी चेतना पूर्णरूप से लुप्त हो जाती है तो उसका दैवी सत्य की प्राप्ति में रूपान्तर (तजौहर) हो जाता है। यह सुकृत (इहसान) की स्थिति है, क्योंकि, "परमात्मा नेकी करने वालों के साथ होता है।"[1] और हमारे पास पैगम्बर का अधिकारपूर्ण वचन है कि "परमात्मा की इस प्रकार उपासना करना कि मानो तू उसे देख रहा है, ही 'इहसान' करना है।"[2]

प्रकाश प्राप्ति (बोध) की विभिन्न श्रेणियों का वर्गीकरण और वर्णन करने का प्रयास करके मैं समय और अपने पाठकों के धैर्य का दुरुपयोग नहीं करूँगा। इनका वर्णन प्रतीकात्मक ढंग से किया जा सकता है, किन्तु इनकी व्याख्या वैज्ञानिक भाषा में नहीं की जा सकती। हमें रहस्यवादियों को अपने बारे में स्वयं ही बोलने का अवसर देना चाहिये। माना कि उनकी शिक्षाएँ बहुधा कठिनाई से समझ में आती हैं, फिर भी वे जितना हम विश्लेषण और सूक्ष्मदर्शिता से प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं, उससे अधिक मूल्य का प्रतिपादन करती हैं।

यहाँ फारसी भाषा में सूफीमत पर सबसे प्राचीन ग्रन्थ हुजवारी के 'कश्फुल-महजूब' से दो अंश दिये जा रहे हैं —

"बताया जाता है कि सरी अल सक्ती ने कहा, 'हे ईश्वर तू मुझे चाहे जो दण्ड दे, किन्तु मुझे अपने दर्शन से वंचित रखने का दण्ड न दे, क्योंकि यदि मैं तेरे दर्शन से वंचित नहीं रहता तो मेरे क्लेश और सन्ताप तेरे स्मरण एवं चिन्तन से हल्के हो जायेंगे। किन्तु

१—इन्नल्लाह लमअल मुहसनीन। —कुरान २६.६६
२—अलइहसानु अन ताबुदल्लाह कअन्नक तराहु। —हदीस

यदि मैं तेरे दर्शन से वंचित रहता हूँ तो तेरी उदारता भी मेरे लिए भयकर हो उठेगी। परमात्मा के दर्शन से वंचित रहने से बढ़कर असह नीय और कष्टदायक कोई दूसरा दण्ड नरक में नहीं है। यदि परमात्मा नरकवासियों के समक्ष प्रकट हो जाय तो धर्म में विश्वास रखने वाले पापात्मा स्वर्ग के बारे में कभी नहीं सोचेंगे, क्योंकि परमात्मा को देखकर उन्हें हर्षातिरेक में शारीरिक पीड़ा का आभास नहीं होगा। स्वर्ग में परमात्मा के साक्षात्कार से बढ़कर पूर्ण अन्य कोई आनन्द नहीं है। यदि स्वर्ग में लोग वहाँ के समस्त आनन्दों एवं अन्य आनन्दों का सौगुना उपभोग करें, किन्तु परमात्मा के दर्शन से वंचित रहें, तो उनके हृदय पूर्णरूप से टूक टूक हो जायेंगे। इसलिए परमात्मा की यह रीति है कि वह उन लोगों के हृदयों में, जो उससे प्रेम करते हैं सदैव प्रतिभासित होता रहे ताकि उसकी प्रसन्नता उन्हें प्रत्येक यातना को सहन करने के योग्य बना दे और वे अपने प्रतिभासित दशा में कह उठें, 'हम तेरे दर्शन से वंचित होने की अपेक्षा समस्त सन्तापों को अधिक वान्छनीय समझते हैं। जब तेरा सौन्दर्य हमारे हृदयों के समक्ष प्रकट हो जाता है तो हम कष्टों की कोई परवाह नहीं करते।"

'चिन्तन वास्तव में दो प्रकार का होता है, प्रथम तो पूर्ण निष्ठा के परिणामस्वरूप और दूसरा प्रेमोल्लास के परिणामस्वरूप। क्योंकि प्रेमोल्लास में मनुष्य उस अवस्था को प्राप्त हो जाता है, जिसमें उसका सम्पूर्ण अस्तित्व अपने प्रिय (इष्ट) के ध्यान में निमग्न हो जाता है और वह कोई अन्य वस्तु नहीं देखता। मुहम्मद इब्न वासी ने कहा था, 'मैंने कभी कोई वस्तु ऐसी नहीं देखी जिसमें मैंने परमात्मा को न देखा हो।' अर्थात् वह प्रत्येक वस्तु को ईश्वर में पूर्ण निष्ठा के साथ देखता था। शिबली का कथन है कि, 'सिवाय परमात्मा के मैंने कभी कोई वस्तु नहीं देखी। अर्थात् उसमें प्रेमोल्लास और चिन्तन का उत्साह भरा हुआ था। एक रहस्यवादी किसी कार्य को अपनी शारीरिक आँखों से देखता है और उसके दृष्टिगत करते ही उसे उसकी आध्यात्मिक दृष्टि के समक्ष

उस कार्य को करने वाला (परमात्मा) दिखाई पड़ जाता है। दूसरा रहस्यवादी अन्य सभी वस्तुओं को देखकर परमात्मा के प्रेम में आह्लादित हो उठता है, यहाँ तक कि उसे केवल परमात्मा ही दिखाई पड़ता है। एक विधि प्रमाणदायक है और दूसरी आनन्ददायक। प्रथम दशा में ईश्वर के सादृश्यों से एक सरल प्रमाण निकाला जाता है और दूसरी दशा में देखने वाला आह्लादित होकर इच्छाओं से परे हो जाता है। सादृश उसके लिये आवरण के समान होते हैं क्योंकि जो व्यक्ति किसी वस्तु को जानता है वह उसके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की परवाह नहीं करता और जो किसी वस्तु से प्रेम करता है वह उसके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का आदर नहीं करता, बल्कि वह परमात्मा के सम्बन्ध में तर्क वितर्क करने से तथा परमात्मा की सत्ता और उसकी व्यवस्थाओं एवं कार्यों में हस्तक्षेप करने से विरत हो जाता है। जब प्रेमी सांसारिक वस्तुओं से अपनी दृष्टि फेर लेगा तो उसका अन्तःकरण स्रष्टा का दर्शन अनिवार्य रूप से पा जायगा। खुदा का वचन है, 'ईमान लाने वालों से कहो कि अपनी आँखें बन्द कर लें'।[१] अर्थात् अपनी शारीरिक आँखें विषयों के प्रति मूँद लें तथा अपनी आध्यात्मिक आँखें (अन्तःचक्षु) सृष्टि की (सांसारिक) वस्तुओं से फेर लें। जो इन्द्रिय दमन में सर्वाधिक सच्चा होता है वही ईश्वर चिन्तन में सर्वाधिक दृढ़ता से स्थापित होता है। मुस्तर निज़ामी सहल इब्न अब्दुल्लाह का कथन है कि, यदि कोई अपनी आँखें खुदा की ओर से क्षण भर के लिए भी बन्द कर ले तो उसे समस्त जीवन भर सही मार्ग नहीं दिखाई पड़ेगा क्योंकि परमात्मा के सिवाय अन्य किसी को मानना स्वयं को परमात्मा को छोड़कर अन्य के हाथों सौंप देना है और जो परमात्मा को छोड़कर अन्य की दया पर निर्भर होता है वह गुमराह हो जाता है। इसीलिए चिन्तनकर्ता अपना जीवन उतने ही समय तक मानता है जब तक कि

१—कुल लिलमुमिनीन यग़ुद्‌दू मिन अबसारिहिम।

—कुरान २४-३०

वह चिन्तन में मग्न रहता है। बाह्य दृश्यों को देखने में बिताये गए समय की गणना वह अपनी आयु में नहीं करता, क्योंकि वह उसके लिए वास्तव में मृत्यु ही होती है। इसी भाँति जब बायजीद से पूछा गया कि उसकी आयु कितनी है, तो उसने उत्तर दिया, 'चार वर्ष।' लोगों ने उससे पूछा कि ऐसा कैसे हो सकता है? उसने उत्तर दिया, "मैं इस संसार द्वारा परमात्मा के दर्शन से सत्तर वर्षों तक वंचित रखा गया, किन्तु गत चार वर्षों से मैं उसे (परमात्मा को) देख रहा हूँ। जितने काल तक कोई परमात्मा के दर्शन से वंचित रहे, वह उसके जीवन का भाग नहीं हो सकता।"

मैं निम्नलिखित उद्धरण निफ़्फ़ारी की पुस्तक 'मवाक़िफ़' से दे रहा हूँ। इसका अधिक परिचय हम आगे चल कर प्राप्त करेंगे—

"परमात्मा ने मुझसे कहा, 'सान्निध्य विद्या का न्यूनतम रूप यह है कि तुम प्रत्येक वस्तु में मुझे देखने का प्रभाव अनुभव करो और इस प्रतिभाषित दृश्य का तुम्हारे ऊपर तुम्हारे मुझ सम्बन्धी ज्ञान की अपेक्षा, अधिक प्रभाव होना चाहिये।" भाष्यकार ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है —

"उसका तात्पर्य है कि सान्निध्य विद्या (ईश्वर के समीप होना) का न्यूनतम रूप यह है कि जब तुम किसी वस्तु को बाह्य इन्द्रियों द्वारा अथवा बौद्धिक रूप से या अन्य प्रकार से देखो तो तुममें यह चेतना होनी चाहिये कि जितना तुम उस वस्तु को देख रहे हो उससे अधिक स्पष्ट रूप से तुम परमात्मा को देख रहे हो। इस विषय में विभिन्न दशाएँ होती हैं। कुछ रहस्यवादी कहते हैं कि वे किसी वस्तु को बिना उसके पूर्व अल्लाह को देखे हुये नहीं देखते। दूसरे रहस्यवादी 'बिना उसके पीछे अल्लाह को देखे हुए' अथवा 'उसके साथ अल्लाह को देखना' कहते हैं या वे यह कहते हैं कि सिवाय परमात्मा के वे अन्य कुछ भी नहीं देखते। किसी सूफ़ी ने कहा, "मैंने 'हज' किया और 'काबा' देखा किन्तु 'काबा' दिखा

खुदा को नहीं देखा।" यह उस व्यक्ति का बोध है जो परमात्मा के दर्शन से वंचित है। तब उसने फिर कहा, "मैंने फिर 'हज' (मक्का की तीर्थ यात्रा) किया और 'काबा' और उसमें स्थित खुदा दोनों को देखा।" यह परमात्मा के अस्तित्व का चिन्तन है, जिसके द्वारा प्रत्येक वस्तु को जीवन मिलता है। अर्थात् उसने 'काबा' का अस्तित्व काबा के प्रभु के द्वारा देखा। तब उसने फिर कहा "मैंने तीसरी बार हज' किया और इस बार मुझे 'काबा' का स्थित खुदा ही दिखाई पड़ा, 'काबा' नहीं दृष्टिगत हुआ। यह 'फ़क़त' (उसमें मिल जाने) की स्थिति है। वर्तमान अवसर पर लक्ष्य परमात्मा के अस्तित्व के चिन्तन की ओर निर्देश कर रहा है।"

अभी तक जो कुछ कहा गया वह प्रकाश प्राप्ति (बोध) के सिद्धान्त के सम्बन्ध में है। यद्यपि हममें से अधिकांश लोगों को किसी ऐसे सजीव अनुभव नहीं प्राप्त हैं फिर भी हमारे द्वारा निर्मित काव्य में हम इसकी गम्भीरतम प्रतिध्वनियाँ सुन सकते हैं तथा इसकी प्राप्ति का अनुमान कर सकते हैं। मैं शीराज़ के दरवेश कवि 'बाबा कूही', जिनकी मृत्यु सन् १०५० ई० में हुई, द्वारा लिखित एक फ़ारसी गीत के एक अंश का अनुवाद कर रहा हूँ।

'हाट में और मठ में मैंने केवल परमात्मा को देखा।
पर्वत पर, घाटी में मैंने केवल परमात्मा को देखा॥
क्लेश में प्रायः उसे अपनी बगल में देखा।
स्नेह में, सौभाग्य में मैंने केवल परमात्मा को देखा॥
साधना और व्रत में, स्तुति एवं चिन्तन में।
पैगम्बर के धर्म में मैंने केवल परमात्मा को देखा॥
न देह और न आत्मा, न घटना और न पदार्थ।
न गुण और न कारण, मैंने केवल परमात्मा को देखा॥
अपनी आँखें खोल, मैंने उसके मुख के प्रकाश में अपने चारों ओर देखा।
और उसमें मेरी आँखें यही खोज पायीं कि मैंने केवल परमात्मा को देखा॥

मानबत्ती की भाँति मैं उसकी आग में पिघल रहा था
बाहर की ओर लपकती लपटों में मैंने केवल परमात्मा को देखा ॥
अपनी आँखों से स्वयं को मैंने बहुत स्पष्ट रूप से देखा,
किन्तु जब मैंने परमात्मा की आँखों से देखा तो मैंने केवल परमात्मा को देखा ॥
मैं शून्य में मिल गया और विलीन हो गया
और देखो कि मुझे अनन्त जीवन मिल गया, क्योंकि मैंने केवल परमात्मा का देखा ॥

सम्पूर्ण सूफीमत इस विश्वास पर आधारित है कि जब व्यक्तिगत स्व का लोप हो जाता है तब विश्वात्मा की प्राप्ति होती है। इसे धार्मिक भाषा में यों कह सकते हैं कि मात्र आह्लाद (आविष्टावस्था) ही वह साधन प्रस्तुत करता है जिसके द्वारा आत्मा परमात्मा से सीधा सम्बन्ध स्थापित करके उससे मिल सकती है। हठयोग, आत्मशुद्धि, प्रेम, ज्ञान, संन्यास आदि सूफीमत की सभी प्रमुख विचारधारायें इसी प्रधान सिद्धान्त से उत्पन्न हुई हैं।

सूफियों द्वारा साधारणतः प्रयुक्त लाक्षणिक शब्दों में आह्लाद के न्यूनाधिक पर्यायवाची शब्द ये हैं—'फ़ना' (मिट जाना), 'वज्द' (अनुभव करना), समा' (श्रवण) 'ज़ौक़' (रुचि) 'शिर्ब' (मदिरापान), 'ग़ैबत' (आत्म विस्मृति), 'जज़्बत (आकर्षण), 'सुक्र' (उन्माद) तथा 'हाल' (आवेग)। सूफ़ियों के मूलग्रन्थों में दी गई इन शब्दों की तथा इनसे मिलते जुलते बहुत से अन्य शब्दों की परिभाषाओं की विस्तृत विवेचना करना विशेष शिक्षाप्रद न होकर केवल थकाने वाला ही होगा। जब आह्लाद का वर्णन "एक दैवी रहस्य जिसे परमात्मा सच्चे धर्मानुयायियों पर, जो उसे निर्भयतापूर्वक की दृष्टि से देखते हैं, प्रकट करता है" के रूप में अथवा "एक ज्योति शिखा जो प्रेमेच्छा से उत्पन्न होकर आत्मा की भूमि में प्रवेश करती है" के रूप में किया जाता है, तब हम आह्लाद की प्रकृति बहुत उचित ढंग से नहीं समझ सकते। उपर्युक्त पारि

जब कि पहली स्थिति 'अह' के नैतिक विकास की ओर संकेत करती है, दूसरी स्थिति 'अह' की सचेतनता और बौद्धिक विकास की ओर संकेत करती है। इस वर्गीकरण का प्रयोग करते हुए हम पहली स्थिति को 'शुद्धि पूर्ण जीवन' का अन्त तथा दूसरी को 'प्रकाश प्राप्त जीवन' का लक्ष्य समझ सकते हैं। तीसरी और अन्तिम स्थिति 'चिन्तनशील जीवन' का उच्चतम स्तर है।

यद्यपि सामान्य रूप से नहीं, फिर भी प्राय 'फ़ना' की स्थिति में इन्द्रिय जनित ज्ञान का लोप हो जाता है। तीसरी शताब्दी के एक प्रसिद्ध सूफ़ी सरी अस-सक़ती का मत है कि इस स्थिति को प्राप्त किसी व्यक्ति के चेहरे पर यदि तलवार से प्रहार किया जाय तो भी उसको चोट की प्रतीति नहीं होगी। अबुल्ख़ैर अल् अक़्ता के पैर में एक नासूर हो गया था। चिकित्सकों ने घोषित किया कि उसका पैर काटकर अलग कर देना चाहिए किन्तु वह इसके लिए अनुमति नहीं देता था। उसके शिष्यों ने कहा, "अंग विच्छेद उस समय कीजिए जबकि वह प्रार्थना कर रहा हो क्योंकि उस समय वह अचेत रहता है।" चिकित्सकों ने उनकी सलाह के अनुसार कार्य किया और जब अबुल्ख़ैर ने अपनी प्रार्थना समाप्त की तो उसने देखा कि उसका अंग विच्छेद किया जा चुका था। यह समझ पाना कठिन है कि 'फ़ना' में दूर तक पहुंचा हुआ कोई व्यक्ति धार्मिक नियमों का पालन कैसे कर पाता है। यह एक ऐसी बात है जिस पर कट्टर रहस्यवादी बहुत बल देते हैं। यहाँ सन्तत्व के सिद्धान्त का सहारा लिया जाता है। परमात्मा को अपने प्रिय भक्तों को अपनी आज्ञाओं की अवज्ञा से बचाने की स्वयं चिन्ता रहती है। कहा जाता है कि 'बायज़ीद', 'शिब्ली' एवं अन्य सन्त लगातार आनन्द विभोरावस्था में उस समय तक लीन रहते जब तक कि नमाज़ का समय न हो जाता। तब वे चैतन्य हो जाते और नमाज़ पढ़ने के पश्चात् पुन आनन्द-विभोरावस्था में निमग्न हो जाते।

करते हैं तो वे साधारणतया ऐसा 'दर बाबे समा' (समा के बारे में) शीर्षक वाले अध्याय में करते हैं। हुजवीरी ने अपनी पुस्तक 'कश्फ़ुल् महजूब' के अंतिम अध्याय में इस शीर्षक के अन्तर्गत अपने और अन्य मुसलमानी सिद्धान्तों का अति सुन्दर सारांश दिया है और साथ ही साथ उन व्यक्तियों की अनेक कथाएँ भी दी हैं जिन पर क़ुरान की कोई आयत, कोई 'हातिफ़' (आकाशवाणी), कविता या संगीत सुनकर आह्लाद का दौरा पड़ गया था। इस प्रकार जाग्रत हुई भावना से बहुतों की मृत्यु भी हो गयी। विवरण देने के लिए मैं यह भी जोड़ देना चाहता हूँ कि एक प्रसिद्ध रहस्यवादी विश्वास के अनुसार ईश्वर ने सृष्टि की प्रत्येक वस्तु को अपनी ही भाषा में परमात्मा की स्तुति करने के लिए अनुप्राणित किया है, ताकि विश्व की समस्त ध्वनियाँ एक बृहत् सामूहिक भजन का रूप धारण कर लें, जिसके द्वारा परमात्मा स्वयं को प्रकाशित करता है। परिणामस्वरूप वे लोग, जिनके हृदयों को खोलकर उसने आध्यात्मिक दृष्टि प्रदान की है, हर जगह उसकी ही वाणी सुनते हैं और 'मुअज्जिन' का लयपूर्वक 'अज़ान' कहना या कन्धे पर मशक लटकाए गली में जाते हुए सक्का (भिश्ती) की आवाज़, या वायु का शोर या भेड़ का मिमियाना या चिड़िया की चहचहाहट सुन कर ही उन पर आह्लाद का दौरा पड़ जाता है।

पैथागोरस और अफ़लातून ने एक दूसरा सिद्धान्त, जिसकी ओर गुरिकबिगण बहुधा संकेत करते हैं, बताया है कि संगीत आत्मा में इस जीवन से पूर्व अर्थात् आत्मा के परमात्मा से विलग होने से पूर्व सुनी गई स्वर्गीय गान की स्मृति जाग्रत करता है। इसी भाँति जलालुद्दीन रूमी ने भी कहा है —

"ग्रहों का परिक्रमा करते हुए गान
वही है जो मनुष्य वीणा और ध्वनि के साथ गाते हैं।
आदम के वंशज होने के नाते
... ... हैं।

यद्यपि जल और थल ने अपना पर्दा हम पर डाल दिया है,
तथापि इन स्वर्गीय गानों की धुँधली स्मृति हम में है।
किंतु जब हम सांसारिकता के भारी पर्दे में इस प्रकार लिपटे हैं,
तो नाचते हुए मंद मण्डल की ध्वनियाँ हम तक कैसे पहुँच सकती हैं!"

'समा' के औपचारिक अभ्यास का सूफियों में शीघ्र ही प्रचार हो गया। इसने एक तीव्र मतभेद को जन्म दिया। कुछ लोग इस नियमानुमोदित और प्रशंसा के योग्य मानते हैं और कुछ इस घृणित नयी पद्धति और वासनाओं के प्रति उत्तेजना मानकर इसकी निन्दा करते हैं। मिस्र देशवासी 'भूउल नून' के कथन में यह मध्यम विचार की ही 'हुजवीरी' ने ग्रहण किया है —

"सङ्गीत एक स्वर्गीय प्रभाव है जो हृदय को ईश्वर की खोज करने के लिए जाग्रत करता है। जो इस आध्यात्मिकता के साथ सुनते हैं वे परमात्मा को प्राप्त होते हैं और जो इसे विषयासक्ति से सुनते हैं वे अधर्म में प्रवृत्त होते हैं।"

अन्त में वह धारणा करता है कि श्रवण न तो अच्छा है और न बुरा और इसका निर्णय इसके परिणामों द्वारा करना चाहिये।

"जब कोई सच्चा साधी किसी मदिरालय में जाता है तो मदिरालय ही उसकी गुहा बन जाता है किन्तु जब कोई शराबी किसी गुहा में जाता है तो वही उसका मदिरालय बन जाती है।"

वह व्यक्ति, जिसका हृदय परमात्मा के ध्यान में लीन रहता है, सङ्गीत वाद्यों को सुनकर भ्रष्ट नहीं हो सकता। नृत्य के विषय में भी ऐसा ही है।

"जब हृदय धड़कता है और आनन्दावस्था तीव्र हो जाती है तथा आह्लाद की व्याकुलता प्रकट हो जाती है और रूढ़ि रूप नष्ट हो जाते हैं तो यह नृत्य या विलासप्रियता न होकर आत्मा का विसर्जन हो जाता है।"

जो भी हो, हुज्वीरी ने 'समा' में प्रवृत्त होने वालों के लिये कई पूर्वावधानात्मक नियम बतलाए हैं और वह स्वीकार करता है कि दरवेशों द्वारा सर्वसाधारण के बीच पेश किये गए सङ्गीत के कार्यक्रम बहुत ही भ्रष्टाचार फैलाने वाले हैं। उसका विचार है कि नवसिखियों को उनमें उपस्थित होने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। आधुनिक काल में भी इन आवेग सम्बन्धी दृश्यों का बहुधा वर्णन प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा किया गया है। अब मैं जामी द्वारा लिखित 'सन्तों की जीवनियाँ' से एक इसी प्रकार के कार्यक्रम के, जो लगभग सात सौ वर्ष पूर्व घटित हुआ था, वर्णन का अनुवाद करूँगा —

'एक हब्शी दरवेश था। उसका नाम जङ्गी बशगिर्दी था। उसने आध्यात्मिकता का इतना ऊँचा दर्जा प्राप्त कर लिया था कि रहस्यवादियों का नृत्य उस समय तक प्रारम्भ नहीं किया जा सकता था जब तक कि वह बाहर निकल कर उसमें सम्मिलित न हो जाता। एक दिन 'समा' होते समय उस पर आह्लाद का दौरा पड़ा और हवा में ऊँचा उठकर वह एक ऊँची मेहराब पर जो नृत्य करने वालों के ऊपर थी, बैठ गया। उतरते समय वह बग़दाद के शेख़ मजदुद्दीन के ऊपर कूद पड़ा और शेख़ की गर्दन अपने पैरों में फँसा ली। यद्यपि शेख़ बहुत दुबला-पतला आदमी था और हब्शी बहुत लम्बा-तगड़ा था, फिर भी वह नृत्य में बराबर चक्कर काटता रहा। नृत्य समाप्त होने पर मजदुद्दीन ने कहा, 'मुझे यह पता नहीं चला कि मेरी गर्दन पर एक हब्शी था या एक गौरैया थी।' शेख़ के कन्धे से उतरने पर हब्शी ने उसके गाल में इतने जोर से काट खाया कि घाव का निशान उसके बाद हमेशा दिखाई पड़ता रहा। मजदुद्दीन प्रायः कहा करता था कि क़यामत के दिन वह किसी वस्तु पर गर्व नहीं करेगा, सिवाय इसके कि उसके चेहरे पर इस हब्शी के दाँतों का चिह्न अंकित है।''

इस्लाम के इन सूफ़ी अनुयायियों के आह्लादमय जीवन के किसी सच्चे चित्रण में कुछ भ्रष्ट और अधम तत्व अवश्य ही दिखाई पड़ेंगे—

भारी विकृतियों का तो कहना ही नहीं। उनके अस्तित्व को छिपाने अथवा उनके महत्व को कम करने से कोई लाभ नहीं है। यदि, जैसा कि जलालुद्दीन रूमी ने कहा है, "मनुष्य शराब और दवाओं की भर्त्सना इसीलिये सहन करते हैं कि वे कुछ क्षणों के लिए अपनी चेतना से बच सकें, क्योंकि सभी जानते हैं कि यह जीवन एक जाल है और संकल्पपूर्ण स्मृति और विचार नरक के समान हैं" तो हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि आध्यात्मिक उन्माद के आनन्द सदैव उत्कृष्ट नहीं होते और मानव प्रकृति की यह चाल होती है कि वह उन लोगों से, जो उसका परित्याग करते हैं, अपना बदला अवश्य लेती है।

तृतीय अध्याय

'मारिफ़त'—ज्ञान

सूफ़ी लोग आध्यात्मिक सन्देश के तीन मुख्य अङ्ग मानते हैं। वे हैं 'क़ल्ब' (हृदय), जो परमात्मा को जानता है, 'रूह' (जीव), जो परमात्मा से प्रेम करता है, और 'सिर्र' (अन्तरात्मा) जो परमात्मा का चिन्तन करता है। यदि हम इन शब्दों की तथा इनके एक दूसरे से सम्बन्ध की व्याख्या करना शुरू करें तो हम अथाह गहराइयों में पहुँच जाएँगे। तीनों में से केवल प्रथम के बारे में ही कुछ कह देना पर्याप्त होगा। 'क़ल्ब' यद्यपि किसी रहस्यपूर्ण ढंग से शारीरिक हृदय से सम्बद्ध है फिर भी यह मांस और रक्त की बनी हुई कोई वस्तु नहीं है। अँग्रेज़ी 'हार्ट' के विपरीत इसकी प्रकृति भावनापूर्ण होने की अपेक्षा बौद्धिक अधिक है, किन्तु जहाँ बुद्धि परमात्मा का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ है, वहाँ 'क़ल्ब' सभी वस्तुओं का सारतत्व समझने की क्षमता रखता है और जब यह श्रद्धा और ज्ञान से प्रकाशवान् हो जाता है तो दैवी बुद्धि का समग्र रूप इसमें प्रतिबिम्बित हो उठता है। इसीलिए पैग़म्बर ने कहा है "मैं (ईश्वर) अपने बनाये हुए पृथ्वी और स्वर्ग में नहीं समाता वरन श्रद्धावान् सेवक के हृदय में मैं समा जाता हूँ।"[1] जो भी हो, यह भाव बहुत कम लोगों को प्राप्त होता है। सामान्यतः हृदय आच्छादित अवस्था में रहता है। यह पाप से कलुषित, इन्द्रियसुख के विचारों तथा कल्पनाओं से मलिन और विक्षेप तथा आवेग के मध्य चंचलावस्था में रहता है। यह वह युद्धक्षेत्र है जिस पर परमात्मा और

१—ला यसअनी अरदी वला समाई वल यसअनी कल्बुल अब्दिल मुमिन। —इमाम

शैतान की सेनायें विजय के लिये संघर्ष करती हैं। एक द्वार से हृदय परमात्मा का निकटतम ज्ञान प्राप्त करता है तो दूसरे से इन्द्रियों के माया जाल में फँसता है। जलालुद्दीन रूमी का कथन है "एक संसार इधर है और एक संसार उधर और मैं दोनों के चौखट पर बैठा हूँ।" अतएव सम्भाव्य रूप से मनुष्य पशुओं से भी निम्न और फरिश्तों से भी उच्चकोटि का होता है।

"मनुष्य के अद्भुत खमीर में फरिश्ते और पशु का सम्मिश्रण है
इनकी इच्छा पर वह इनसे निम्नतर होता है,
किन्तु दिव्यता की इच्छा करने पर वह फरिश्तों से भी आगे बढ़ जाता है।"

मनुष्य पशुओं से भी हीन इसलिए होते हैं कि उनमें उत्थान के योग्य बनाने वाले ज्ञान की कमी होती है और फरिश्ते उससे भी श्रेष्ठ इसलिए होते हैं कि वे वासना में बह नहीं जाते। इसके फलस्वरूप उनका पतन नहीं होने पाता।

मनुष्य परमात्मा को कैसे जाने? इन्द्रियों द्वारा नहीं क्योंकि परमात्मा निराकार है। बुद्धि द्वारा भी नहीं, क्योंकि वह विचारातीत है। तर्कशास्त्र परिमिति से आगे नहीं जा सकता दर्शन शास्त्र की दृष्टि दोहरी होती है और पुस्तकों द्वारा प्राप्त ज्ञान अहंकार का पोषण करता है और सत्य (परमात्मा) के विचार को थोथे शब्दों के बादलों से ढक देता है। जलालुद्दीन रूमी परिमितवादी धर्मशास्त्रियों को सम्बोधित करते हुए भर्त्सनापूर्वक पूछता है —

'क्या तुम कोई नाम जानते हो जिससे किसी वस्तु का बोध न हो?
क्या तुमने कभी गु, ला, ब, अक्षरों से गुलाब तोड़ा है?
तुम परमात्मा के नाम का कथन नाम कहते हो, जाओ इस नाम की वास्तविकता की खोज करो।

चन्द्रमा को आकाश में ढूँढ़ो, जल में नहीं।

यदि तुम्हारी इच्छा निरे नामों और अक्षरों से ऊपर उठने की है,
तो स्वयं को एक ही झटके में अपने अहं से स्वतंत्र कर लो।
अहं में आरोपित सभी गुणों से शुद्ध हो जाओ, ताकि तुम स्वयं
अपना दिव्य स्वत्व देख सको।

हाँ, पैगम्बर द्वारा दिया गया ज्ञान तुम अपने हृदय में बिना किसी
पुस्तक, शिक्षक या उपदेशक के देखो।"

यह ज्ञान प्रकाश प्राप्ति, इल्हाम (प्रकटीकरण) और दैवी प्रेरणा से
प्राप्त होता है।

सूफ़ी कहता है, 'तुम अपने हृदय में देखो, क्योंकि ईश्वर का राज्य
तुम्हारे भीतर ही है।" जो सचमुच अपने को जानता है वही परमात्मा
को जानता है, क्योंकि हृदय एक ऐसा दर्पण है जिसमें प्रत्येक ईश्वरीय
गुण प्रतिबिम्बित होता है। जैसे इस्पात का बना हुआ दर्पण मोर्चा लग
जाने से प्रतिबिम्बित करने की अपनी शक्ति खो बैठता है, ठीक उसी भाँति
आन्तरिक अध्यात्मेन्द्रिय, जिसे सूफ़ी लोग हृदय चक्षु कहते हैं, स्वर्गीय
सौन्दर्य के प्रति अन्धी हो जाती है और यह दशा उस समय तक बनी
रहती है जब तक कि दृश्य जगत की अहं से सम्बन्धित कलुषित बाधाएँ
अपनी सभी वासनामय भ्रष्टताओं सहित पूर्ण रूप से साफ़ नहीं हो
जातीं। यह उद्धार केवल परमात्मा ही प्रमाणपूर्ण ढंग से कर सकता
है, यद्यपि इसमें मनुष्य के आन्तरिक सहयोग की भी कुछ आवश्यकता
पड़ती है। "जो कोई हमारे लिए प्रयत्न करेगा, हम उसे अपने यहाँ
का मार्ग दिखाते चलेंगे।"[1] वह कार्य, जिसे कोई अपने द्वारा किया
हुआ मानता है, झूठा और दृश्य होता है। बोध प्राप्त रहस्यवादी
परमात्मा को ही प्रत्येक कार्य का वास्तविक कर्ता मानते हैं, अतएव
वे अपने कार्यों के लिए कोई यश नहीं लेते और न उनके लिए
पारितोषिक पाने की ही इच्छा रखते हैं।

1—वल्लज़ीना जाहदू फ़ीना लनहदियन्नहुम सुबुलना। —क़ुरान २६

जब कि साधारण ज्ञान को 'इल्म' शब्द से निर्दिष्ट किया जाता है, रहस्यवादी ज्ञान को, जो सूफ़ियों की अपनी विशेषता है 'मारिफ़त' अथवा 'इरफ़ान' कहा जाता है। जैसा कि मैंने पूर्ववर्ती अनुच्छेद में बताया है 'मारिफ़त' मूलतः 'इल्म' से भिन्न है और इसका अनुवाद करने के लिए किसी भिन्न शब्द का प्रयोग करना चाहिए। एक उपयुक्त पर्यायवाची शब्द के लिए हमें अधिक दूर तक नहीं ढूँढना पड़ेगा। यूनानी अध्यात्म का 'ग्नासिस' अर्थात् प्रकटीकरण या भविष्यदर्शी दृष्टि पर आधारित परमात्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान ही सूफ़ियों की 'मारिफ़त' है। यह किसी मानसिक प्रक्रिया का फल नहीं है, वरन् यह पूर्ण रूप से परमात्मा की इच्छा और कृपा पर निर्भर है और वह इसे अपने पास से वरदान रूप में उन लोगों को प्रदान करता है जिनको उसने इसे ग्रहण करने की योग्यता के साथ सृजन किया है। यह ईश्वरीय कृपा का एक प्रकाश है जो हृदय में चमक उठता है और जिसकी चकाचौंध कर देने वाली किरणों में मनुष्य की प्रत्येक मानसिक शक्ति नष्ट हो जाती है। "जो परमात्मा को जान लेता है वह मूक हो जाता है।"

निफ़्फ़ारी ने, जो एक अज्ञात दरवेश था और जिसकी मृत्यु मिस्र देश में दसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुई, चिन्तनशील रहस्यवाद पर लिखे अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ में 'ग्नासिस (ज्ञान) और विषयानन्द रूप में स्थिति सम्बन्ध की विवेचना की है। उसकी रचना, जिसमें 'इल्हामों' की एक माला दी हुई है जिनमें परमात्मा सेवक को सम्बोधित करके ज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्त के बारे में उपदेश देता है अति गूढ़ भाषा में लिखी हुई है और साथ में दिये गये भाष्य के बिना इसको समझना कठिन है। किन्तु इस अध्याय में दिये गये उद्धरणों से और मूलग्रन्थ की मूल व्याख्या के रूप में इसका मूल्य पर्याप्त रूप से प्रकट हो जायगा।

निफ़्फ़ारी के कथनानुसार परमात्मा को खोजने वाले तीन प्रकार के होते हैं —प्रथम वे उपासक हैं जिन्हें परमात्मा अपना ज्ञान पारितोषिक द्वारा प्रदान करता है। अर्थात् वे परमात्मा की उपासना स्वर्ग अथवा

स्वप्न और चमत्कार सदृश कोई आध्यात्मिक प्रतिफल प्राप्त करने की आशा से करते हैं। दूसरे वे दार्शनिक और पाण्डित्यवाद के धर्मशास्त्री हैं जिन्हें परमात्मा अपना ज्ञान ऐश्वर्य के द्वारा कराता है। अर्थात् वे ऐश्वर्यवान् परमात्मा को, जिसकी वे खोज करते हैं, नहीं पाते। इसलिए वे यह दावा करते हैं कि परमात्मा का स्वरूप अज्ञेय है। वे कहते हैं "*हम जानते हैं कि हम उसे नहीं जानते, और यही हमारा ज्ञान है।*" तीसरे वे ज्ञानी हैं जिन्हें परमात्मा अपना ज्ञान आह्लाद द्वारा कराता है अर्थात् उन पर ऐसे आनन्द का अधिकार और नियन्त्रण होता है जो उन्हें व्यक्तिगत अस्तित्व की चेतना से रहित कर देता है।

निम्नश्रेणी ज्ञानी को उपासना के केवल उन्हीं कार्यों को करने की आज्ञा देता है जो उसके परमात्मा के प्रतिभासित दृश्य से मेल खाते हों, यद्यपि ऐसा करने में उसे अवश्य ही सामान्य लोगों के लिए बनाये गये धार्मिक नियमों की अवहेलना करनी पड़ेगी। उसकी आन्तरिक भावना को ही यह निर्णय करना चाहिए कि धर्म के बाह्य रूप उसके लिए किस सीमा तक अच्छे हैं।

"परमात्मा ने मुझसे कहा कि तू मुझसे यह कहकर पूछ, 'हे प्रभु, मैं किस प्रकार तुझसे चिपटा रहूँ ताकि मेरे निर्णय (क़यामत) के दिन *तू मुझे दण्ड न दे और मेरी ओर से अपना मुँह मोड़ न ले।*' तब मैं तुझे यह कहकर उत्तर दूँगा, 'अपने बाह्य सिद्धान्तों और सुन्ना (पैग़म्बर द्वारा बनाये गये नियम) के बाह्याचारों को थामे रह और अपनी आन्तरिक *भावना को उस ज्ञान के साथ सलग्न कर दे जो मैंने तुझे प्रदान किया* है। तू यह जान ले कि जब मैंने तुझे अपना बोध कराया है तो मैं सुन्ना की कोई बात तुझसे स्वीकार नहीं करूँगा सिवाय उस बात के जो मेरे द्वारा तुझे प्राप्त होती है, क्योंकि तू उन लोगों में से है जिनसे मैं बोलता हूँ। तू मेरी वाणी सुनता है और जानता है कि तू मुझे सुन रहा है और तू देखता है कि सभी वस्तुओं का उद्गम मैं ही हूँ।"

भाष्यकार का कहना है कि मुक्ता, अभिप्राय में सामान्य होने के कारण सत्य की खोज करने वाले और परमात्मा की खोज करने वाले व्यक्तियों के बीच कोई अन्तर नहीं करता, बरन शास्त्र में वह ठीक उतना ही देता है जितनी प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता होती है। प्रत्येक व्यक्ति के लिये मुख्य रूप से समुचित भाग की विवेचना या तो ईश्वर द्वारा हृदय को प्रत्यक्ष ज्ञान से भरी है अथवा किसी आध्यात्मिक गुरु के बताए हुए मार्ग से।

"और उसने मुझसे कहा, 'मेरा वाणी इल्हाम (प्रकटीकरण) मेरे गुप्त (आन्तरिक) इल्हाम से मेल नहीं खाता।'"

इसका तात्पर्य यह है कि यदि ज्ञानी का आन्तरिक अनुभव धार्मिक नियमों के विपरीत पड़े तो भी उसे त्रस्त और उद्विग्न नहीं होना चाहिए। यह विरोध केवल ऊपरी होता है। धर्म ऊपरी होता है। धर्म मनुष्यों के सामान्य समूह को, जिनके मन, तर्क, परम्परा आदि ने उन्हें आच्छादित कर रखा है, सम्बोधित करता है, जब कि ज्ञान उन चुने हुए भक्तों के लिए है जिनके शरीर और आत्मा अनन्त प्रकाश में स्नान कर चुके हैं। धर्म प्रत्येक वस्तु को अनेकत्व के दृष्टिकोण से देखता है, जब कि ज्ञान सर्वव्यापी एकत्व (परमात्मा) को ही मानता है। इसी कारण एक ही कार्य धर्म में अच्छा किन्तु ज्ञान में बुरा माना जाता है। यह अन्य स्थान में इस प्रकार कहा जाता है —

"शुद्ध आचरण वालों के अच्छे कार्य परमात्मा के प्रिय भक्तों के लिए बुरे कार्य हैं।"

यद्यपि भक्ति के साथ ज्ञान के साथ बेमेल नहीं है, तो भी जो कोई अपने में उसका तनिक भी सन्देह करता है वह ज्ञानी नहीं है। निम्न लिखित दृष्टान्त का यही मुख्य विषय है। निफ़्फ़री ने जितना स्पष्ट रूप से यहाँ लिखा है, शायद ही कहीं लिखा हो तथापि मेरा विचार है कि मेरे शब्दों में से कुछ भी शब्दों में दी गई व्याख्याओं का बिल्कुल निरर्थक नहीं पाएगा।

समुद्र का इल्हाम

परमात्मा ने मुझे आज्ञा दी कि समुद्र को देखो। मैंने जहाज़ों को डूबते और तख्तों को तैरते हुए देखा। तत्पश्चात् तख्ते भी डूब गए।"

[समुद्र से तात्पर्य उन आध्यात्मिक अनुभवों से है जिनसे होकर रहस्यवादी परमात्मा की ओर यात्रा करता है। यहाँ प्रश्न यह है कि वह धार्मिक नियमों को प्रमुखता दें अथवा (परमात्मा के प्रति) उदासीन प्रेम को। यहाँ उसे चेतावनी दी गई है कि वह अपने सत्कार्यों पर, जो डूबते हुए जहाज़ों से अधिक अच्छे नहीं हैं और कभी भी उसे तट पर सुरक्षित दशा में नहीं पहुँचायेंगे भरोसा न करे। यदि उसे परमात्मा को प्राप्त करना है तो केवल परमात्मा पर ही भरोसा रखना चाहिए। यदि वह परमात्मा पर पूर्ण रूप से भरोसा नहीं करता, बल्कि किसी अन्य वस्तु पर तनिक भी भरोसा करता है तो उसकी दशा तख्ते से चिपटे हुए व्यक्ति के समान है। यद्यपि परमात्मा पर उसका भरोसा पहले की अपेक्षा अधिक है, फिर भी यह पूर्ण नहीं है।]

'और उसने मुझसे कहा, वे लोग जो समुद्रयात्रा करते हैं सुरक्षित नहीं रहते'।"

[समुद्रयात्री जहाज़ को समुद्र पार करने के साधन-रूप में काम में लाता है, अतएव वह प्रधान कारण (परमात्मा) पर भरोसा न करके गौण कारणों पर भरोसा करता है।]

"और उसने मुझसे कहा, 'जो लोग समुद्र यात्रा करने के बजाय स्वयं अपने को समुद्र में डाल देते हैं वे जोखिम उठाते हैं'।"

[समस्त गौण कारणों का परित्याग करना समुद्र में कूद पड़ने के समान है। ऐसा साहस करने वाला रहस्यवादी दो कारणों से ख़तरे में पड़ जाता है यह सोच सकता है कि त्याग के कार्यों को आरम्भ और पूर्ण करने वाला वह स्वयं ही है, न कि परमात्मा और जो कोई किसी वस्तु का त्याग अर्द्ध के साथ करता है वह स्वयं भी बुरी अवस्था में होता है

जिसमें परित्याग न करने पर होता। अथवा वह गौण कारणों को अर्थात् अच्छे कार्यों, स्वर्ग की आशा आदि को परमात्मा के लिए नहीं वरन् निपट उदासीनता तथा आध्यात्मिक भावना के अभाव के कारण त्यागता है।]

"और उसने मुझसे कहा, 'जो लोग समुद्रयात्रा करते हैं और जोखिम नहीं उठाते वे नष्ट हो जायेंगे'।"

[ऊपर निर्दिष्ट किए हुए खतरों के होते हुए भी वह या तो परमात्मा को अपना चरम लक्ष्य बना ले या असफलता का वरण करे।]

"और उसने मुझसे कहा, 'जोखिम उठाने से मोक्ष का केवल एक अंश मात्र प्राप्त होता है।"

[मोक्ष का केवल एक अंश इसलिए कि पूर्ण निःस्वार्थ भाव अभी तक नहीं प्राप्त हुआ है। पूर्ण मोक्ष सभी गौण कारणों और सारे दृश्य जगत को परमात्मा के प्रतिभासित दृश्य से उत्पन्न आनन्द द्वारा मिटा देने से उपलब्ध होता है। किन्तु यह ज्ञान है और प्रस्तुत 'दृष्टान्त' निम्न श्रेणी के रहस्यवादियों को सम्बोधित करके कहा गया है। ज्ञानी कोई भी जोखिम नहीं उठाता क्योंकि उसके पास खोने की कोई वस्तु नहीं होती।]

"और लहर आई और नीचे पड़े हुए लोगों को उठाकर किनारे पर पटक दिया।"

[लहरों के नीचे पड़े हुए लोग वे हैं जो जहाजों में समुद्रयात्रा करते हैं और परिणाम स्वरूप जहाज़ के ध्वस्त हो जाने पर दुःख उठाते हैं। उनका गौण कारणों पर भरोसा करना ही उन्हें किनारे पर ला पटकता है। अर्थात् उन्हें पुनः इस दृश्य जगत में वापस लाता है, जहाँ वे परमात्मा के दर्शन से वंचित रह जाते हैं।]

"और उसने मुझसे कहा, 'समुद्र का ऊपरी तल एक प्रकाश किरण है, जो पहुँच से बाहर है'।"

[जो कोई उपासना के बाह्याचारों पर इसलिए निर्भर रहता है कि वे उसे परमात्मा तक ले जायेंगे वह दलदल में उत्पन्न होने वाले प्रकाश के पीछे दौड़ता है।]

"और इस समुद्र का तल अमेय अन्धकार है।"

[विधेयात्मक धर्म को पूर्ण रूप से त्याग देना मार्गहीन भूल भुलैया में भटकने के समान है।]

"और दोनों के मध्य मछलियाँ हैं जिनसे भय रहता है।"

[यहाँ शुद्ध बाह्याचारवाद और शुद्ध अन्तस्संस्कार के बीच के मध्यम मार्ग की ओर सकेत किया जा रहा है। मछलियों से तात्पर्य इसमें आने वाली शंकाओं तथा बाधाओं से है।]

"तू समुद्र में यात्रा न कर कहीं ऐसा न हो कि मैं तुझे वाहन द्वारा ही आच्छादित कर दूँ।"

[वाहन का अभिप्राय जहाज़ से, अर्थात् परमात्मा को छोड़ कर अन्य किसी वस्तु पर भरोसा करने से, है।]

"और तू अपने को समुद्र में भी मत डाल दे कहीं ऐसा न हो कि मैं तुझे तेरे स्वय को डाल देने द्वारा ही आच्छादित कर दूँ।"

[जो कोई किसी कार्य को स्वयं अपने द्वारा किया हुआ समझता है और उसके कर्तृत्व का आरोप स्वय में करता है वह परमात्मा से बहुत दूर रहता है।]

'और उसने मुझसे कहा, 'समुद्र में सीमाएँ भी हैं, उनमें से कौ तुझे पार कर सकती है?"

['सीमाएँ' आध्यात्मिक अनुभव की विभिन्न श्रेणियाँ हैं। रहस्यव का इनमें से किसी पर भी भरोसा नहीं करना चाहिये, क्योंकि वे अपूर्ण हैं।]

"और उसने मुझसे कहा, 'अगर तू अपने को समुद्र को समर्पि देता है और उसमें डूब जाता है, तो तू उसमें निवास करने वाले का शिकार हो जायगा'।"

[यदि रहस्यवादी गौण कारणों पर भरोसा करता है अथवा स्वेच्छा से उनका परित्याग करता है तो वह भटक जायगा ।]

"और उसने मुझसे कहा, 'यदि मैं तुझे अपने अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की ओर जाने को कहता हूँ तो मैं तुझे धोखा देता हूँ' ।"

[यदि रहस्यवादी की आन्तरिक वाणी उसे परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की ओर जाने को कहती है तो वह उसे धोखा देती है ।]

"और उसने मुझसे कहा, 'यदि तू मुझको छोड़कर अन्य किसी के लिये जान देता है तो तू उसी का होकर रहेगा जिसके लिये तूने जान दी है' ।"

"और उसने मुझसे कहा 'यह लोक उसका है जिसे मैंने इससे विमुख कर दिया है तथा जिससे मैंने इसे विमुख कर दिया है । परलोक उसका है जिसकी ओर मैं उसे लाता हूँ तथा जिसे मैं अपनी ओर लाता हूँ' ।"

[इस कथन का तात्पर्य यह है कि अनन्त आनन्द उन लोगों के भाग्य की वस्तु है जिनके हृदय इस संसार से विमुख हो चुके हैं तथा जिनके अधिकार में कोई भी सांसारिक वस्तु नहीं है । वे ही इस संसार का वास्तविक आनन्द उठाते हैं क्योंकि यह उन्हें परमात्मा से विमुख नहीं करता । इसी प्रकार से परलोक के सच्चे अधिकारी वे लोग हैं जो स्वर्ग की इच्छा ही नहीं करते, क्योंकि उनका आन्तरिक लक्ष्य केवल परमात्मा का चिन्तन करना है, न कि स्वर्ग की इच्छा करना ।]

ज्ञानी विषयात्मक धर्म में भी सन्त का उच्च देखा देता है किन्तु उसका ज्ञान धर्म अथवा किसी प्रकार के मानवीय ज्ञान से नहीं प्राप्त होता । इसका समुचित सम्बन्ध दैवी गुणों से होता है, जिनका ज्ञान परमात्मा स्वयं अपने उन सन्तों पर प्रकट करता है जो उसका चिन्तन करते हैं । मिस्र देशवासी जून नून ने जो अपने रहस्यवादी सिद्धान्तों के मुस्लिम ब्रह्मविद्या का जनक माना जाता है, कहा है कि ज्ञानी

नहीं रहते हैं और न अपने द्वारा जीवित ही रहते हैं, बल्कि वे जहाँ तक जीवित रहते हैं परमात्मा के द्वारा ही जीवित रहते हैं।

"वे जैसे परमात्मा उन्हें चलाता है, वैसे ही चलते हैं, उनके शब्द परमात्मा के ही शब्द हैं जो उनकी जिह्वा से प्रस्फुटित होते हैं तथा उनकी दृष्टि परमात्मा की ही दृष्टि है, जो उनकी आँखों में समा गई है।"

ज्ञानी परमात्मा के गुणों का चिन्तन करता है, न कि उसके स्वत्व का, क्योंकि ज्ञान में भी द्वैत भावना कुछ अंश में शेष रह जाती है। इसका लोप केवल 'फना अल फना' में अर्थात् अविभक्त परमेश्वर में पूर्णरूप से विलीन हो जाने में होता है। परमात्मा का मुख्य गुण एकत्व है और देवी एकत्व ही ज्ञान मार्ग का प्रथम और अन्तिम सिद्धान्त है।

मुसलमान और सूफी दोनों घोषित करते हैं कि परमात्मा एक है किन्तु प्रत्येक उदाहरण में इस कथन के भिन्न भिन्न अर्थ होते हैं। मुसलमान का अभिप्राय यह होता है कि परमात्मा अपने स्वत्व, गुणों तथा कर्मों में अद्वितीय है तथा अन्य सभी जीवों से पूर्णतया भिन्न है। सूफी का अभिप्राय यह होता है कि परमात्मा 'एक वास्तविक सत्ता' है जो सम्पूर्ण दृश्य जगत में व्याप्त है। जैसा कि हम देखेंगे, यह सिद्धान्त अपने चरम निष्कर्ष तक पहुँच गया है। यदि परमात्मा के सिवाय अन्य किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है, तो मनुष्य सहित समस्त विश्व अवश्य ही परमात्मा के साथ एक रूप है चाहे यह मान लिया जाय कि इसकी उत्पत्ति परमात्मा से, बिना उसकी एकता नष्ट किए, उसी प्रकार होती है, जैसे सूर्य से रश्मियाँ निकलती हैं। अथवा इसे एक दर्पण मान लिया जाय, जिसमें दैवी गुणों का प्रतिबिम्ब पड़ता है। किन्तु निश्चय ही उस परमात्मा को, जो सब कुछ है अपने को इस प्रकार प्रकट करने का कोई कारण नहीं है। 'एक' क्यों 'अनेक' में परिवर्तित हो? सूफीगण इसके उत्तर में प्रसिद्ध परम्परागत कथन का उदाहरण पेश करते हुए

कहते हैं (यद्यपि एक दार्शनिक यही कहेगा कि ये कठिनाई से बचते हैं) 'मैं एक गुप्त ख़ज़ाना था और मेरी इच्छा हुई कि मैं जाना जाऊँ अतएव मैंने सृष्टि की रचना की, ताकि मैं जाना जा सकूँ।" दूसरे शब्दों में, परमात्मा अनन्त सौन्दर्य है और सौन्दर्य की यह प्रकृति है कि वह प्रेम की इच्छा करे। रहस्यवादी कवियों ने 'एक' अर्थात् परमात्मा के आत्मप्रकाशन का वर्णन अति सुन्दर कल्पनाओं द्वारा बहुतायत से किया है। उदाहरणार्थ जामी कहता है —

"सम्पूर्ण निर्लिप्तता से प्रिय ने अपना सौन्दर्य अनदेखों के एकान्त में प्रकट किया। उसने दर्पण अपने समक्ष रखा और अपने सौन्दर्य का प्रदर्शन अपने ही सामने किया। वह दर्शक और दृश्य दोनों ही था सिवाय उसके अन्य किसी आँख ने विश्व को नहीं माना। सब कुछ एक था कोई द्वैत अथवा नहीं भी 'मेरा' और 'तेरा' का मन्भाव नहीं था। आकाश का वृहत् चक्र सहस्रों भीतर आने वालों तथा बाहर जाने वालों समेत एक बिन्दु मात्र में छिपा था। जन्म से पूर्व बच्चे की भाँति सृष्टि अनस्तित्व की निद्रा में सुप्त पड़ी थी। प्रिय की आँखों ने उसे देखा जिसका अस्तित्व ही न था और उसने अनस्तित्व को ही अस्तित्व माना। यद्यपि उसने अपने गुणों और विशेषताओं का अपने ही स्वप्न में सम्पूर्ण रूप में देखा, तथापि उसकी यह इच्छा हुई कि वे गुण और विशेषतायें उसके समक्ष एक दूसरे दर्पण में प्रदर्शित हों और उसके नित्य गुणों में से प्रत्येक तदनुसार भिन्न रूप में प्रकट हो। अतएव उसने काल और स्थानरूपी हरे भरे खेतों और संसाररूपी जीवनदायी वाटिका का सृजन किया, ताकि प्रत्येक शाखा पत्ती और फल उसकी विभिन्न निपुणताओं का प्रदर्शित करे। सरो के वृक्ष ने उसके सुन्दर डील-डौल की ओर संकेत किया। गुलाब ने उसके सम्पत्तिवान् मुखड़े का सन्देश सुनाया। जहाँ कहीं सौन्दर्य दिखाई पड़ा, प्रेम भी उसके साथ ही प्रकट हुआ। जहाँ सौन्दर्य गुलाबी कपोलों में चमका वहीं प्रेम ने उसकी लपटों से अपनी मशाल जलाई। जहाँ सौन्दर्य ने काली अलकों में निवास किया वहीं

प्रेम आया और उनकी गेंडुरी में किसी हृदय को फँसा हुआ पाया। सौन्दर्य और प्रेम का सम्बन्ध देह और आत्मा की भाँति है। सौन्दर्य खान है और प्रेम मूल्यवान् पत्थर (हीरा) है। प्रारम्भ से ही वे सदैव साथ रहे हैं और कभी भी उनकी यात्रा एक दूसरे से विलग होकर नहीं हुई।"

एक दूसरे ग्रन्थ में जामी ने परमात्मा और संसार के सम्बन्ध का अधिक दार्शनिक रूप से वर्णन निम्नलिखित ढंग से किया है —

"निरपेक्ष, अगोचर, अपरिमित और नानात्व से परे समझा जाने वाला वह विलक्षण सत्य ही परम सत्य (अल-हक) है। दूसरी तरफ अपने नानात्व और अनेकत्व में जब वह सभी गोचर वस्तुओं में अपने आपको प्रकट करता है तो वह सम्पूर्ण रची हुई सृष्टि वही है। अतएव यह सृष्टि उस परम सत्य की दृश्यमान बाह्य अभिव्यक्ति है और वह परम सत्य इस सृष्टि का आभ्यन्तर अदृश्य सत्य है। यह सृष्टि गोचर होने के पूर्व उसी परम सत्य के सदृश थी और गोचर होने के पश्चात् उस परम सत्य का इस सृष्टि के साथ सादृश्य है।"

दृश्यमान जगत स्वतः असत् है और इसका आकस्मिक अस्तित्व केवल परम सत्ता के गुणों से, जो इसमें प्रतिबिम्बित होते हैं, प्राप्त होता है। यह इन्द्रिय गोचर जगत उस अग्नि के गोलाकार चक्र की तरह है जो एक ही अग्नि-स्फुलिङ्ग को चारों ओर जोर से घुमाने से बनता है।

मनुष्य सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी और अन्तिम कारण है। यद्यपि सृष्टि के क्रम में वह अन्तिम है, फिर भी दैवी चिन्तन की प्रक्रिया में वह सर्वप्रथम है, क्योंकि उसकी मुख्य विशेषता मौलिक बुद्धि या सार्वभौमिक विवेक है जो केवल परमेश्वर से ही उत्पन्न होता है। यह सब वस्तुओं के कारण प्रद सिद्धान्त—त्रयी सिद्धान्त, (पिता पुत्र और पवित्रात्मा) में से दूसरे के समान है और इसका पैगम्बर मुहम्मद साहब का स्वरूप माना जाता है। ईसाई और सूफी सिद्धान्तों के बीच यहाँ एक रोचक समानता दिखाई जा सकती है। इस्लाम के संस्थापक के लिये उन्हीं

अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया जाता है जिन्हें सेण्ट जॉन, सेण्ट पाल और उनके उत्तरवर्ती धर्मशास्त्रियों ने ईसा मसीह के लिए प्रयुक्त किया है। इस प्रकार मुहम्मद साहब को अल्लाह का नूर (प्रकाश) कहा जाता है। उनके लिए कहा जाता है कि उनका वजूद (अस्तित्व) सृष्टि की रचना के पहले ही था उनकी आराधना समस्त यथार्थ और सम्मत जीवन के उद्गम के रूप में की जाती है और वह ऐसे पूर्ण मनुष्य हैं जिनमें समस्त दैवी गुणों का आविर्भाव हुआ है। एक सूफी परम्परा तो इस कथन का आरोप भी उन्हीं में करती है, "जिसने मुझको देखा उसने अल्लाह को देख लिया।"[1] फिर भी मुस्लिम योजना में तर्क सिद्धान्त को नीचा स्थान दिया गया है, जैसा कि उस दशा में होना ही चाहिए जबकि मनुष्य का पूर्ण कर्तव्य यही माना जाता है कि वह परमात्मा में मिल जाय। यूरोपीय रहस्यवाद के विपरीत प्राच्य रहस्यवाद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें एक सर्व शक्तिमान सत्ता और सर्वव्यापी एकत्व के प्रति, जिसमें वैयक्तिकता के समस्त अवशेष विलीन हो जाते हैं, पूर्ण चेतना बनी रहती है। सूफी का ध्येय यह नहीं है कि वह परमात्मा के सदृश हो जाय या स्वयं दैवी गुणों में भाग ले, वरन् यह है कि वह अपने अवास्तविक अहंता के बन्धन से उन्मुक्त होकर एक अनन्त सत्ता में पुनः मिल जाय।

जामी के कथनानुसार 'मिलन' हृदय को अकेला बना देने में होता है। अर्थात् हृदय को परमात्मा के सिवाय अन्य प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध से विमुख करके शुद्ध कर लेना चाहिए, यहाँ तक कि उसके प्रति इच्छा और संकल्प भी नहीं रखना चाहिए और ऐसा ही ज्ञान और अज्ञान के सम्बन्ध में भी करना चाहिए। रहस्यवादी को चाहिए कि वह अपनी इच्छा और संकल्प को समस्त इच्छित और संकल्पित वस्तुओं से विलग कर ले। उसकी विवेक दृष्टि के सामने समस्त पदार्थों को जिनके बारे में जाना या समझा जा सकता है, लुप्त हो जाना चाहिए। उसके विचारों

१—मन र आनी फ़क़द र अल्लाह। —हदीस

को केवल परमात्मा की ओर उन्मुख रहना चाहिए और उसे किसी अतिरिक्त वस्तु की चेतना नहीं रहनी चाहिए।

जब तक वह आवेग एवं विषयासक्ति के जाल में बन्दी है, उसके लिए परमात्मा से यह सम्बन्ध स्थापित रखना कठिन है। किन्तु जब उसकी अन्तरात्मा से इन्द्रिय गोचर पदार्थों और विश्वासों के प्रति पूर्व धारणाओं को बाहर निकाल कर उसमें उस आकर्षण के प्रति सूक्ष्म प्रभाव प्रकट हो जाता है तो उस दैवी सम्पर्क का आनन्द शारीरिक भोगों और आध्यात्मिक सुखों को दबा लेता है। इस अवस्था में इन्द्रिय दमन का कष्टदायक कार्य समाप्त हो जाता है और चिन्तन का माधुर्य उसकी आत्मा को आनन्द विभोर बना देता है।

जब सच्चा आत्मदर्शी अपने में इस आकर्षण, अर्थात् परमात्मा के स्मरण में आनन्द, का प्रारम्भ होता देखे तो उसे चाहिए कि वह अपने मन को समग्ररूप से इसे पुष्ट और परिपक्व करने में लगाए रक्खे जो कुछ भी इससे असंगत हो उससे अपने को पृथक् रखे और यह विचार करे कि चाहे उसे चिरकाल तक इस सम्पर्क को उत्पन्न करने के लिये प्रयत्नशील रहना पड़े, वह स्वयं कुछ भी नहीं कर सकेगा और अपना कर्त्तव्य उस ढंग से न पूरा कर पायेगा जैसा कि उसे करना चाहिये।

"प्रेम ने मेरी आत्मा की वीणा में प्रेम तन्त्री को झंकृत किया
और मुझे सिर से पैर तक समग्र रूप से प्रेम में परिवर्तित कर दिया।
यह केवल क्षण भर के स्पर्श से हुआ किन्तु क्या समय कभी,
आभार प्रदर्शन के ऋण का मुझ पर आरोप कर सकेगा।"

यह सूफ़ियों की एक स्वयंसिद्धि है कि मनुष्य में जो कुछ नहीं है उसे वह नहीं जान सकता। ज्ञानी अर्थात् सर्वश्रेष्ठ मनुष्य परमात्मा और विश्व के समस्त रहस्यों को तब तक नहीं जान सकता जब तक वह उन्हें स्वयं में न पा ले। वह संसार का सूक्ष्म रूप है, परमात्मा की मूर्ति की एक नक़ल है और संसार की आँख है जिसके द्वारा परमात्मा अपने कार्यों का अवलोकन करता है। वास्तविक रूप का बोध होते ही वह परमात्मा को

जान लेता है किन्तु वह स्वयं को परमात्मा के द्वारा ही जान पाता है, जो प्रत्येक वस्तु के उसके अपने ज्ञान से भी निकट रहता है। परमात्मा का ज्ञान पूर्वगामी है और आत्म-ज्ञान का कारण है।

ज्ञान का अर्थ एकमेक होना और इस तथ्य का बोध होना है कि *एकत्व के साथ नानात्व का आभास एक झूठा और छलपूर्ण स्वप्न है।* ज्ञान इस विचार को, जो अज्ञानी मनुष्यों को जीवन भर भ्रमित रखता है तथा जो उनके और परमात्मा के बीच गहन अन्धकार की दीवार की भाँति खड़ा रहता है उतार देता है। ज्ञान घोषित करता है कि 'मैं' एक सार्थक शब्द है और कोई भी किसी सकल्प, भावना, विचार अथवा कार्य का निर्देश शुद्ध रूप से अपने अहं के प्रति नहीं कर सकता है।

निफ्फारी ने देव वाणी को उससे यह कहते सुना था—

"जब तू अपने को अस्तित्व वाला मानता है और मुझे अपने अस्तित्व का कारण नहीं मानता तो मैं अपना चेहरा छिपा लेता हूँ और तेरा अपना ही चेहरा तेरे सामने प्रकट होता है। अतएव तू विचार कर कि क्या तुझे दिखाया गया है और क्या तुझसे छिपाया गया है।"

[यदि कोई मनुष्य अपना अस्तित्व परमात्मा के द्वारा मानता है तो उसमें परमात्मा का अंश गोचर तत्त्वों से प्रबल हो उठता है और उन्हें नष्ट कर देता है, यहाँ तक कि उस परमात्मा के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। इसके विपरीत यदि वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व मानता है तो उसके समक्ष उनकी अवास्तविक अहम्मन्यता ही प्रकट होती है और अल्लाह की हकीकत (परमात्मा का सत्य स्वरूप) उसके सामने से अदृश्य हो जाता है।]

"*न तो मेरे प्रदर्शन को ही मान्यता दे और न प्रदर्शित वस्तु को,* नहीं तो तू हँसेगा और रोयगा, और जब तू हँसता और रोता है तब तू तेरा ही रहता है, मेरा नहीं होता।"

[जो व्यक्ति दैवी इल्हाम (प्रकटीकरण) के कार्य को ही मान्यता देता है वह एकदेववाद का अपराधी होता है, क्योंकि प्रकटीकरण में

प्रकट करने वाला और प्रकटित वस्तु दोनों अपेक्षित हैं और जो कोई प्रकटित वस्तु को, जो इस विश्व सृष्टि का अंश मात्र है, मान्यता देता है वह परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु को मान्यता देता है। हँसी का तात्पर्य उस प्रसन्नता से है जो तुम्हें लाभान्वित होने पर होती है और रोदन उस दुःख की ओर संकेत करता है जो तुम्हें हानि उठाने पर होता है। दोनों ही स्वार्थपूर्ण कर्म हैं। ज्ञानी न तो हँसता है और न रोता है।]

"जो कुछ मैंने तेरे समक्ष प्रदर्शित किया है और जो कुछ प्रदर्शित कर रहा हूँ वह सब यदि तू पीछे नहीं छोड़ देता तो तू सफल नहीं होगा और जब तक तू सफल नहीं होगा तू मुझमें केन्द्रीभूत नहीं होगा।"

[सफलता का अर्थ ईश्वर में सच्चा विश्वास है, जिसके लिये सृष्टि की वस्तुओं से पूर्णरूप से विलग हो जाने की आवश्यकता पड़ती है।]

यदि तर्कपूर्ण ढंग से देखा जाय तो यह सिद्धान्त प्रत्येक नैतिक और धार्मिक नियम का अन्त कर देता है। ज्ञानी की दृष्टि में कोई भी दैवी पुरस्कार और दण्ड नहीं होते और न उसके सामने उचित और अनुचित के मानवीय मापदण्ड ही होते हैं। उसके लिये तो परमात्मा का लिखित शब्द एक सीधे और प्रत्यक्ष इल्हाम द्वारा रद्द कर दिया गया है।

अबुल्हसन ख़ुरक़ानी ने घोषित किया है, "मैं यह नहीं कहता कि बैकुण्ठ और नरक (बहिश्त और दोज़ख़) का कोई अस्तित्व नहीं है वरन् मैं यह कहता हूँ कि वे मेरे लिए कुछ भी नहीं हैं क्योंकि परमात्मा ने उन दोनों की रचना की है और जिस स्थान पर मैं हूँ वहाँ किसी भी रचित वस्तु के लिये कोई स्थान नहीं है।"

इस दृष्टिकोण से सभी प्रकार के धर्म समान हैं और इस्लाम मूर्ति पूजा से कुछ विशेष अच्छा नहीं है। इसका कोई महत्व नहीं है कि कोई मनुष्य कौन-सा धर्म स्वीकार करता है और किन किन धार्मिक कृत्यों को प्रतिपादित करता है।

"सच्ची मस्जिद का निर्माण शुद्ध और पवित्र हृदय में हुआ है

वहीं सब लोग परमात्मा की उपासना करें,
क्योंकि उसका निवास वहीं है न कि पत्थर की मस्जिद में।"

ज्ञानी सब प्रकार के धर्मों और उपासकों में केवल एक वास्तविक उपास्य को ही देखता है।

इब्नुल अरबी का कथन है —"जो लोग परमात्मा की आराधना सूर्य में करते हैं उन्हें वह सूर्य के रूप में दिखाई पड़ता है। जो लोग उसकी उपासना जीवित वस्तुओं में करते हैं उन्हें वह जानदार के रूप में दिखाई पड़ता है। जो लोग उसकी आराधना निर्जीव पदार्थों में करते हैं उन्हें वह निर्जीव पदार्थ के रूप में दिखाई पड़ता है। जो लोग उसे निलक्षण और अद्वितीय सत्ता के रूप में पूजते हैं उन्हें वह उसी रूप में दिखाई पड़ता है, जिसकी समानता कोई नहीं कर सकता। अपने को तुम किसी धर्म विशेष से ही पूर्णतया सम्बद्ध मत करो, क्योंकि ऐसा करने से शेष सभी धर्मों में तुम्हारी अश्रद्धा हो जायगी। तुम बहुत सी अच्छी बातें खो दोगे। इतना ही नहीं बल्कि तुम इस विषय का वास्तविक सत्य भी नहीं पहचान सकोगे। सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान परमात्मा किसी एक ही धर्म में सीमित नहीं है, क्योंकि वह कहता है, "तुम जिधर भी अपना मुँह फेरो अल्लाह का ही चेहरा है।"[1] जो जिसमें विश्वास रखता है उसी की स्तुति करता है। उसका देवता स्वयं उसका ही द्वारा रचित होता है और उसकी स्तुति करने में वह स्वयं अपनी ही स्तुति करता है। परिणाम स्वरूप वह दूसरों के विश्वासों की निन्दा करता है जैसा कि वह न्याय प्रिय होता तो न करता, किन्तु उसकी घृणा का आधार अज्ञान है। यदि वह जुनैद का यह कथन कि 'जल जिस पात्र में रहता है उसी का रंग धारण कर लेता है', मान जाय तो वह दूसरों के विश्वासों में हस्तक्षेप न करे, वरन् प्रत्येक प्रकार के विश्वास (धर्म) में परमात्मा को ही देखे।"

हाफ़िज़ सम्भवतः पहरस्वामी की अपेक्षा स्वतन्त्र विचारक के रूप में इस प्रकार गाता है —

[1]—ऐनमा तुवल्लू फसम्मा वज्ह इल्लाह। —कुरान (२ १०६)

"मठ की दीवारों पर या मदिरालय के फ़र्श पर
जहाँ तेरे चेहरे का जलवा पड़ता है,
वहीं प्रेम न बुझने वाली लपट के रूप में प्रकट हो जाता है।
जहाँ पगड़ी बाँधे हुये ज़ाहिद (सन्यासी)
रात दिन अल्लाह का नाम जपता है,
वहीं प्रार्थना के लिए गिरजे की घंटियाँ बजती हैं
और वहीं ईसा का क्रास होता है।"

सूफ़ीमत स्वतंत्र विचारकों के सम्प्रदाय से भी सम्बन्ध स्थापित कर सकता है, जैसा कि इसने बहुधा किया भी है, किन्तु यह कभी भी साम्प्रदायिकता के साथ नहीं मिलता। इससे स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश सूफ़ीगण, कम से कम नाममात्र के लिए ही, मुस्लिम सम्प्रदाय के सहिष्णु वर्ग से क्यों सम्बद्ध रहे हैं। अब्दल्लाह अन्सारी का कहना था कि दो सहस्र सूफ़ी शेखों में से, जिनसे वह परिचित था, केवल दो ही शिया थे। कोई एक व्यक्ति, जो अलीअ अली का वंशज और धर्मोन्मत्त शिया था, निम्नलिखित कहानी सुनाता है —

"पाँच वर्षों तक मेरे पिता नित्य मुझे एक आध्यात्मिक गुरु के पास भेजते थे। मैंने उससे एक लाभदायक पाठ सीखा। उसने मुझे बताया कि जब तक मैं अपने यशाभिमान से पूर्ण रूप से मुक्त नहीं हो जाता, मैं सूफ़ीमत के बारे में कभी भी नहीं जान सकूँगा।"

साधारण विचारकों ने शाबीमत को सूफ़ीमत की एक शाखा बताया है किन्तु एक का स्वमताभिमान स्वभावतः दूसरे के उदार गुणग्राही सिद्धान्त के विरुद्ध है। जिस प्रकार सूफ़ीमत परमात्मा का अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करता जाता है, उसी अनुपात से उसके धार्मिक पक्षपात कम होते जाते हैं। शेख अब्दुल रहीम इब्न अल् सब्बाग ने, जिन्होंने पहले ऊपरी मिस्र में वहाँ की यहूदी और ईसाई जनता के साथ रहना नापसन्द किया था, अपनी वृद्धावस्था में कहा था कि मैं किसी यहूदी या ईसाई

को उसी प्रसन्नता के साथ गले लगाऊँगा जिस प्रकार स्वयं अपने धर्म वाले को।

जब कि धर्म और संस्कारों के असमान रूपों का आन्तरिक महत्व दिया जा सकता है, क्योंकि उनको अनुप्राणित करने वाली आन्तरिक भावना सदैव एक ही होती है, एक दूसरे पहलू से वे रूप पर आवरण के समान भी प्रतीत होते हैं। वे ऐसे पर्दे हैं जिन्हें मिटाने और नष्ट करने के लिए उत्साही अद्वैतवादी को अवश्य प्रयत्न करना चाहिए —

"यह लोक और परलोक मिलकर एक अण्डा है जिसके भीतर का पक्षी पंखहीन, उपेक्षित और तिरस्कृत, अन्धकार में पड़ा है। आस्तिकता और नास्तिकता को इस अण्डे की जर्दी और सफेदी माना। उनके मध्य उन्हें मिलाने और विभक्त करने वाला एक अवरोध है, जिसे वे पार नहीं कर सकते। जब यह (परमात्मा) इस अण्डे को कृपा करके अपने पंख के नीचे सेता है तब नास्तिकता और धर्म दोनों लुप्त हो जाते हैं और अद्वैत रूपी पक्षी अपने पंख फैला देता है।"

महान् फारसी रहस्यवादी अबू सईद इब्न अबी अल्-खैर ने पवित्रों या मुसलमान दरवेशों के नाम से उनके मूर्तिभंजक सिद्धान्तों को आश्चर्य-जनक निर्भीकता के साथ व्यक्त किया है —

"जब सूर्य के नीचे प्रत्येक मस्जिद ढह जायगी,
तभी हमारा पवित्र कार्य पूरा होगा,
जब तक धर्म और नास्तिकता एक नहीं हो जाते
तब तक सच्चा मुसलमान कभी नहीं प्रकट होगा।"

इस्लाम धर्म के विरुद्ध इस प्रकार की खुली युद्ध घोषणाएँ अपवाद रूप में ही हैं। पूर्ण विकसित सूफीमत और सनातन पंथ इस्लाम के मध्य चौड़ी और गहरी खाई होते हुए भी यदि अधिकांश ने नहीं तो बहुत से सूफियों ने पैगम्बर को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है और सब मुसलमानों के लिए आवश्यक भक्ति के धार्मिक नियमों का पालन किया है। उन्होंने इन धार्मिक कृत्यों और संस्कारों को नया रूप पहिनाया है। उन्होंने

इनका वर्णन कार्यों में किया है किन्तु इनका परित्याग नहीं किया है। उदाहरणार्थ 'हज' (मक्का की तीर्थ यात्रा) को ही ले लीजिए। सच्चे सूफ़ी की दृष्टि में यह उस समय तक बिल्कुल व्यर्थ है जब तक कि इसमें क्रम से किये जाने वाले प्रत्येक धार्मिक कार्य के साथ हृदय में भी उसी प्रकार का परिवर्तन न हो जाय। एक व्यक्ति, जो हज करके लौटा ही था, जुनैद के पास आया। जुनैद ने पूछा :—

'जिस समय से तुमने अपने घर से यात्रा का श्री गणेश किया, क्या उसी समय से तुम समस्त पापों से भी दूर हटते रहे हो?" उसने कहा, 'नहीं!' जुनैद ने कहा, "तब तुमने कोई यात्रा नहीं की। प्रत्येक विश्रामस्थल पर, जहाँ तुम रात्रि में ठहरे, क्या तुमने परमात्मा के मार्ग का कोई स्थान पार किया?" उसने उत्तर दिया 'नहीं!" जुनैद ने कहा, "तब तुम क्रम से इस मार्ग पर नहीं चले। जब तुमने हाजी का वस्त्र, अपने वस्त्र उतार कर, उचित स्थान पर पहिना तो क्या तुमने अपने वस्त्रों को उतारने के साथ मानव प्रकृति के गुणों का भी परित्याग किया?" 'नहीं!' "तब तुमने हाजी का लिबास पहना ही नहीं। जब तुम अरफ़ात स्थान पर खड़े हुये तो क्या तुमने एक क्षण के लिए भी परमात्मा का चिन्तन किया?" 'नहीं!' "तब तुम अरफ़ात पर खड़े ही नहीं हुए। जब तुम मुज़दालिफ़ा गये और अपनी इच्छा पूर्ण की तो क्या तुम समस्त कामेच्छाओं से भी विरक्त हुये?" 'नहीं!' 'तब तुम मुज़दालिफ़ा गये ही नहीं। जब तुमने काबा की परिक्रमा की तो क्या तुमने शुद्धता के गेह में परमात्मा का निराकार सौन्दर्य देखा?" "नहीं!" "तब तुमने काबा की परिक्रमा की ही नहीं। जब तुम सफ़ा और मर्वा के बीच दौड़े तो क्या तुमने सफ़ा' (शुद्धता) तथा 'मुरव्वत' (सदाचार) का ग्रहण किया?" "नहीं!" "तब तुम दौड़े ही नहीं। जब तुमने 'मिना' का दर्शन किया, तब क्या तुम्हारी समस्त मुना' (इच्छायें) मिटीं?" "नहीं!' 'तब तुमने 'मिना' का दर्शन अभी तक नहीं किया। जब तुम बलि वेदी पर पहुँचे और बलि पेश की। तब क्या तुमने सांसारिक

इच्छा के पदार्थों का भी बलिदान किया ?" "नहीं !" "तब तुमने बलिदान किया ही नहीं। जब तुमने कंकड़ फेंके तब क्या तुमने अपने इन्द्रियजन्य विषयक विचारों का भी परित्याग किया !" "नहीं !" "तब तुमने कंकड़ फेंके ही नहीं और तुमने अभी तक 'हज' नहीं किया है।"

इस उपाख्यान में बाह्यात्मशान के बाह्य धार्मिक नियम की तुलना सूफ़ीमत के आन्तरिक आध्यात्मिक सत्य से की गई है और यह प्रकट किया गया है कि उन्हें एक-दूसरे से पृथक् नहीं रखना चाहिए।

हुजवीरी कहता है कि, "सत्य के बिना नियम केवल आडम्बर है और नियमरहित सत्य केवल पाखंड है। उनका पारस्परिक सम्बन्ध मानो उपना देह और जीव से की जा सकती है। जब जीव देह से निकल जाता है, तब जीवित शरीर शव बन जाता है और जीव वायु की भाँति अदृश्य हो जाता है। मुस्लिम धर्म घोषणा में दोनों का समावेश है। ये शब्द कि 'अल्लाह के सिवा और कोई ख़ुदा नहीं है' सत्य हैं और ये शब्द कि 'मुहम्मद अल्लाह का रसूल (देवदूत) है' नियम हैं। जो सत्य से इन्कार करता है वह काफ़िर है और जो नियम को अस्वीकार करता है वह पाखण्डी और नास्तिक है।"

लोक प्रसिद्धि के अनुसार यद्यपि मध्य का मार्ग सुरक्षित होता है, किन्तु इस पर चलना कठिन होता है। केवल भन शाली व्यक्ति द्वारा ही इस्लाम को उस गुप्त सिद्धान्त के समान स्तर पर लाया जा सकता है, जिसे सूफ़ीगण इसका मर्म ग्रहण करते हैं। निस्सन्देह उन्होंने इस्लाम के लिए एक महान् कार्य किया है। उन्होंने धर्म की भूसा (बाह्याडम्बर) को निर्दयता पूर्वक निकाल कर और इस बात पर जोर देकर कि किसी औपचारिक कार्य द्वारा नहीं, वरन् आध्यात्मिक भावनाओं को जागृत करके तथा मनुष्य की अन्तरात्मा को शुद्ध करके धर्म के गूदे (सारतत्व) को खोजना चाहिए, लाखों व्यक्तियों के जीवन सुधारे और विश्वकल्याण

बनाया है। यह पैगम्बर की शिक्षाओं का यथायोग्य और सर्वाधिक फल दायक विभाग था। परन्तु पैगम्बर एक कट्टर एकेश्वरवादी थे, जब कि सूफीगण—उनके कथन और कल्पनायें चाहे जो कुछ भी हों—ब्रह्मवादी, विश्वात्मवादी अथवा वेदान्ती होते हैं। जब वे विधेयात्मक धर्म के सिद्धान्तों को मानने वालों की भाँति बोलते या लिखते हैं तब वे ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं जिसका समाधान एकत्व के ऐसे सिद्धान्त के साथ, जिसकी हम समीक्षा कर रहे हैं, नहीं किया जा सकता। अज़ीज़ुद्दीन अल् सिलिम्बानी ने, जिसके निष्कारी पर लिखित भाष्य में से मैंने कुछ उद्धरण इस अध्याय में दिये हैं, स्पष्ट रूप से कहा है कि सम्पूर्ण क़ुरान बहुदेववाद है। वेदान्ती दृष्टिकोण से यह कथन पूर्णतय सत्य है, यद्यपि बहुत कम सूफ़ियों ने इतना स्पष्टवादी होने का साहस किया है।

रहस्यवादी मुवहिदीन' (अद्वैतवादी) इस प्रतिकूलता का आभास स्वीकार करते हैं किन्तु इसकी वास्तविकता से इन्कार करते हैं। वे कह सकते हैं कि "नियम और सत्य (शरीअत और हक़ीक़त) एक ही वस्तु के भिन्न भिन्न रूप हैं। नियम तुम्हारे लिये है और सत्य हमारे लिये है। तुम्हें सम्बोधित करते समय हम तुम्हारी समझने की सामर्थ्य के अनुसार ही बोलते हैं, क्योंकि जो वस्तु ज्ञानियों के लिये पथ्य है, वही अदीक्षित व्यक्तियों के लिए विष है और अपवित्र व्यक्तियों की अनगोचरता से उच्चतम रहस्यों को सजगता पूर्वक बचाना चाहिये। यह मनुष्य का केवल तर्क है जो एक ही वस्तु को दोहरा देखता है और नियम व सत्य के विरुद्ध संतुलित करता है। इन विरोधों के संसार से निकल कर उस परमात्मा के साथ एक हो जाओ जिसका 'सानी' (द्वितीय) कोई भी नहीं है।"

ज्ञानी यह मानता है कि नैतिक क्षेत्र में नियम प्रबल एवं आवश्यक है। जब तक अच्छाई और बुराई है तब तक नियम दोनों के ऊपर आज्ञा देता निषेध करता, पुरस्कृत करता और दण्ड देता कायम रहता है।

दूसरी ओर वह यह भी जानता है कि वास्तव में केवल परमात्मा ही अस्तित्वयीन तथा सक्रिय है। अतएव यदि बुराई वास्तव में है तो वह दैवी होनी चाहिये और यदि बुरे काय वास्तव में किये जाते हैं तो उनका कर्त्ता परमात्मा का ही होना चाहिये। निष्कर्ष गलत है, क्योंकि कल्पना ही गलत है। बुराई का कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है वह असत् है। अर्थात् सत् का अभाव है जैसे कि प्रकाश का अभाव ही अन्धकार है। नूरी कहता है, "एक बार मैंने प्रकाश का (परमात्मा को) देखा और मैंने अपनी टकटकी उस पर स्थिर कर दी यहाँ तक कि मैं प्रकाश स्वरूप हो गया।" कोई आश्चर्य नहीं यदि ऐसी प्रकाशमान आत्माएँ, जो इस असत्य जगत में धर्म और नैतिकता के छाया दृश्यों के प्रति पूर्णतय उदासीन हैं, जलालुद्दीन के साथ इस प्रकार यह उत्तर को प्रस्तुत रहें —

"ईश्वर-भक्त सत्य से बुद्धिमान् होता है।
ईश्वर-भक्त पुस्तक से विद्वान् नहीं होता है।
ईश्वर भक्त धर्माधर्म से परे होता है।
ईश्वर-भक्त उचित अनुचित को समान जानता है।"

स्मरण रखना चाहिये कि यह सिद्धान्त पूर्णत्व का है और जिन लोगों को यह नियम के ऊपर उठाता है वे सन्त, आध्यात्मिक गुरु तथा गम्भीर रहस्यवादी होते हैं। वे परमात्मा के विशेष कृपा पात्र होते हैं। परिणाम स्वरूप, उन पर बन्धन लगाने, दबाव डालने अथवा दण्ड देने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। व्यवहार करने में निश्चय ही यह सिद्धान्त कई दिशाओं में अविश्वरविरोधवाद तथा लम्पटता की ओर ले जाता है जैसा कि 'कलन्दरियों' और तथाकथित 'नियमरहित' दरवेशों के अन्य सम्प्रदायों में होता है। मध्य युग में इन्हीं सिद्धान्तों ने बिल्कुल ऐसा ही प्रभाव यूरोप में उत्पन्न किया और निष्पक्ष इतिहासकार उन भ्रष्टाचारों की उपेक्षा नहीं कर सकता, जिनके लिये पूर्णत्व से

वैयक्तिक रहस्यवाद उत्तरदायी है। किन्तु इस समय हमें गुलाब के फूल से ही मतलब है, न कि उसमें लगे हुये कीड़ों से।

सभी सूफी ज्ञानी नहीं होते और जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है जो लोग अभी ज्ञान प्राप्ति के लिये परिपक्व नहीं हुये हैं, वे अपने ज्ञानी गुरुओं से अपनी आवश्यकताओं के अनुसार नैतिक शिक्षा प्राप्त करते हैं। जलालुद्दीन रूमी ने अपने गीतों के संग्रह 'दीवाने शम्सी तबरीज' में विश्वात्मवादी धर्मोन्माद को, जो सभी वस्तुओं को अनन्त के रूप में ही देखता है, खुली छूट दे दी है —

"मैंने द्वैत भावना मिटा दी है, मेरी दृष्टि में दोनों लोक एक ही हैं।

मैं एक ही को खोजता हूँ एक ही को जानता हूँ, एक ही को देखता हूँ, एक ही को पुकारता हूँ।

मैं प्रेम के प्याले से मदमस्त हूँ, दोनों लोक मेरी दृष्टि से ओझल हो चुके हैं।

मुझे सिवाय मदिरापान और रंगरेलियाँ मनाने के कोई काम नहीं है।"

किन्तु अपनी 'मसनवी' में जो एक प्रसिद्ध कृति है और जिसे आदरपूर्वक 'फारस का कुरान' कहा जाता है, वह हमें गम्भीर मुद्रा में सूफी सिद्धान्तों को विस्तार से समझाता और मनुष्य के लिये परमात्मा द्वारा बनाये गये नियमों का औचित्य सिद्ध करता हुआ दिखाई पड़ता है। यद्यपि वह पक्का आशावादी है और गज़ाली से इस बात पर सहमत है कि यह संसार सभी सम्भव संसारों से श्रेष्ठ है फिर भी वह बुराई की समस्या को वास्तविकता से परे की वस्तु मानकर एकदम से अस्वीकार नहीं कर देता, वरन् वह यह दिखाने का प्रयत्न करता है कि बुराई, अथवा जो कुछ भी हमें बुरा प्रतीत होता है, दैवी आशा और सामञ्जस्य का एक अंग है। उसकी तर्कपूर्ण विवेचना के कुछ अनुच्छेद उद्धृत

कर मैं यह निर्णय अपने पाठकों पर ही छोड़ दूँगा कि यह कहाँ तक सफल अथवा बतलाने योग्य है।

स्मरण रखना चाहिये कि सूफ़ीगण विश्व की कल्पना परमात्मा की अभिव्यक्ति और प्रतिबिम्बित प्रतिमा के रूप में करते हैं। अनेक उद्गमों से निकल कर दैवी प्रवाह अन्ततोगत्वा असत्‌रूपी अन्धकार पर पड़ता है, जिसका प्रत्येक अणु परमात्मा का कोई न कोई गुण प्रतिबिम्बित करता है। उदाहरणार्थ प्रेम और दया के सुन्दर गुण बहिश्त (बैकुण्ठ) और फ़रिश्तों के रूप में प्रतिबिम्बित होते हैं तथा क़हर (क्रोध) और इन्तक़ाम (प्रतिशोध) के भयंकर गुण दोज़ख (नरक) तथा शैतानों के रूप में प्रतिबिम्बित होते हैं। मनुष्य सुन्दर और असुन्दर सभी गुणों को प्रतिबिम्बित करता है यह स्वर्ग और नरक का संक्षिप्त संग्रह है। उमर ख़य्याम इसी सिद्धान्त की ओर संकेत करता हुआ कहता है —

"दोज़ख हमारे निष्फल कष्टों से प्रकट एक चिनगारी है,
स्वर्ग हमारी प्रसन्नता के समय का एक क्षण है।"

इस द्विपद को फ़िट्ज़ जेराल्ड ने अत्यन्त सुन्दर छन्द में ढाल दिया है —

स्वर्ग केवल पूर्ण अभिलाषाओं की कल्पना है और
नरक प्रज्वलित आत्मा की छाया अन्धकार पर पड़ता छाया है,
जिसमें से हम बहुत देर से निकले किन्तु जिसमें हम बहुत
जल्द ही नष्ट हो जायेंगे।

अतएव एक प्रकार से जलालुद्दीन बुराई के कर्तृत्व का आरोप परमात्मा में ही करता है किन्तु साथ ही साथ वह परमात्मा के रूप में बुराई का वास्तविक रूप में अच्छा मानता है, क्योंकि वह शुद्ध दैवी गुणों का प्रतिबिम्ब है जो स्वतः पूर्णरूप से अच्छे हैं। जहाँ तक बुराई वास्तव में बुराई है, वह असत् से प्रकट होती है। कवि इस शब्द को परमात्मा से सम्बन्ध और मनुष्य से सम्बन्ध के अनुसार दो भिन्न महत्व देता है। परमात्मा के सम्बन्ध में असत् का अर्थ शून्य है क्योंकि वास्तव

विक सत् केवल परमात्मा है, किन्तु जहाँ तक मनुष्य का सम्बन्ध है कुरान का सिद्धान्त मानव प्रकृति के आधे भाग पर लागू होता है। एक दशा में यह एक निषेध मात्र है, दूसरी दशा में निषेधात्मक और क्रियाशील रूप से अवकारक है। इसलिये कि यदि अपने तर्क में स्वयं फंस गया है, हमें उससे झगड़ने की आवश्यकता नहीं है। कुछ ऐसे भी अवसर आते हैं, जब स्पष्ट नैतिक भावना किसी भी प्रकार के अति सूक्ष्म चिन्तन के समक्ष पहुँच जाती है।

यह स्पष्ट है कि दैवी मिलन का सिद्धान्त प्रारब्ध को उपलक्षित करता है। जहाँ परमात्मा है और उसके सिवा कुछ भी नहीं है, वहाँ कोई अन्य कर्ता नहीं हो सकता और उसके सिवा दूसरे का कोई कार्य नहीं हो सकता। "जब तूने फेंका तो तूने नहीं फेंका वरन् अल्लाह ने फेंका"[1] वाक्यता की अनुभूति केवल उन लोगों को होती है, जिनमें प्रेम का अभाव होता है। परमात्मा को जानना उससे प्रेम करना है। ज्ञानी का उत्तर भी उसी दरवेश की भाँति हो सकता है, जिसने यह पूछे जाने पर कि उसने कैसे यात्रा की, कहा था —

"मैंने उसके समान यात्रा की जिसके महान् संकल्प द्वारा पृथ्वी घूमती है बाढ़ आती है, नदियाँ बहती हैं और तारागण अपने मार्गों पर चलते हैं मृत्यु और जीवन जिसके शोक और हर्ष के मन्त्री हैं जो निर्भर हैं उसकी आज्ञा पर और पहुँचते हैं पृथ्वी के कोने-कोने तक।"

यही हक़ीक़त (सत्य) है। किन्तु जिनकी सामर्थ्य से यह बाहर है, ऐसे लोगों को लाभान्वित करने के लिये जलालुद्दीन परमात्मा के न्याय पर प्रतिपादन यह करता हुआ करता है कि मनुष्यों को यह चुनने का अधिकार है कि वे किस प्रकार कार्य करें, यद्यपि उनकी स्वतंत्रता दबी

१—व मा रमयता इज़ रमयता व ला किन्नल्लाहा रमा।
—क़ुरान ८ १७

इच्छा के अधीन है। "परमात्मा क्यों बुराई को बनाता और नियुक्त करता है," इस प्रश्न का स्पष्टीकरण करते हुये यह बतलाता है कि वस्तुयें अपनी असंगतियों द्वारा जानी जाती हैं और अच्छाई के प्रकाश में आने के लिये बुराई का अस्तित्व आवश्यक है।

"जहाँ कहीं असत् और त्रुटि के दर्शन होते हैं, वे सत् के सौन्दर्य के लिये दर्पण के समान हैं। टूटा फिर लिये पद रांगा के सिवा अन्य किस पर हड्डी बैठाने वाला अपना कौशल दिखा सकता है? यदि खराब किस्म का ताँबा घरिया में न हो तो रसायन शास्त्री अपनी कला कैसे दिखा सकता है?"

और यदि बुराई की सृष्टि न हुई होती तो परमात्मा की सर्वशक्तिमानता का बोध भी पूर्णरूप से न होगा।

"जैसा कि तू कहता है यह बुराई का उद्गम है फिर भी बुराई उसे हानि नहीं पहुँचाती। बुराई का निर्माण ही उसकी निपुणता को घोषित करता है। मैं एक दृष्टान्त सुनाता हूँ स्वर्ग का कलाकार सुन्दर कुरूप आकृतियाँ चित्रित करता है। एक चित्र में मिस्र देश की सर्वोत्तम सुन्दरियाँ युवा युसुफ को टकटकी लगाए कामातुर होकर देख रही हैं। उसी हाथ द्वारा बनाये गये एक दूसरे चित्र में नरकाग्नि और अपने भयंकर दल सहित इब्लीस (शैतानों का राजा) दिखाई पड़ते हैं। दोनों सर्वोत्तम कृतियाँ हैं और इनका निर्माण अच्छे उद्देश्यों के लिये, अर्थात् उसकी पूर्ण प्रतिभा को प्रदर्शित करने तथा उसकी निपुणता से इन्कार करने वाले नास्तिकों को आश्चर्यचकित कर देने के लिए, हुआ है। यदि यह बुराई को न बना सकता तो उसके कौशल में कमी दिखाई पड़ती। इसलिए वह काफिर (विधर्मी) और सच्चे मुसलमान, दोनों को एक समान ही बनाता है ताकि दोनों ही उसके साक्षी रहें और उस एक सर्वशक्तिमान प्रभु की उपासना करें।"

जो परमात्मा बुराई का निर्माण करता है वह स्वयं भी बुरा होगा, इस आक्षेप के उत्तर में जलालुद्दीन कला से दी गयी उपमा का अनुसरण

करते हुये कहना है कि चित्र में क्रूरता होना चित्रकार की क्रूरता का कोई प्रमाण नहीं है।

बुराई के अभाव में आत्म विजय के पुरस्कार पवित्र गुणों को प्राप्त करना असम्भव हो जायगा। निगलने के पहले रोटी को तोड़ना आवश्यक है और अगूर जब तक कुचले नहीं जाते, उनसे मदिरा नहीं प्राप्त की जा सकती। अनेक मनुष्य कष्ट सह कर ही प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। जैसे जैसे बुराई घटती है अच्छाई बढ़ती जाती है। अन्त में अधिकांश बुराई का आभास मात्र रह जाता है। जो एक के लिये अभिशाप प्रतीत होता है वही दूसरे के लिए वरदान हो सकता है इतना ही नहीं ऊंचे व्यक्तियों के लिए बुराई ही अच्छाई में परिवर्तित हो जाती है। जलालुद्दीन यह नहीं स्वीकार करता कि कोई वस्तु पूर्णरूप से बुरी हो होती है।

"मूर्ख लोग जाली सिक्के इसलिए लाते हैं कि वे असली के समान होते हैं। यदि संसार में टकसाल में बने असली सिक्के न चलते होते तो जाली सिक्के बनाने वाले जाली सिक्कों को कैसे चलाते। असत्य का कोई अस्तित्व नहीं है जब तक उसे स्वीकार करने के लिए सत्य मौजूद न हो। उचित के प्रति प्रेम ही मनुष्यों को अनुचित की ओर जाने का प्रलोभन देता है। विष को चीनी में मिलाने भर दो और वे लोग इसे अपने मुंह में ठूँस-ठूँस कर भर लेंगे। यह मत चिल्लाओ कि सभी धर्म व्यर्थ हैं! सत्य की कुछ सुगन्ध उनमें अवश्य है अन्यथा वे मनोरञ्जक न होते। यह मत कहो कि ये पूर्णरूप से काल्पनिक हैं। संसार में कोई भी कल्पना पूर्णरूप से असत्य नहीं है। दरवेशों की भीड़ में कोई एक सच्चा फकीर छिपा रहता है। अच्छी तरह से ढूँढो और तुम उसे पा जाओगे।"

निश्चय ही यह एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। दान्ते के जन्म से कुछ ही वर्ष बाद जलालुद्दीन की मृत्यु हुई किन्तु इसाई कवि अपने मुस्लिम समकालीन की उदारता और सहिष्णुता के स्तर से बहुत ही नीचे है।

बुरी वस्तुओं में अच्छाई की आत्मा के दर्शन करना किस प्रकार सम्भव है ! जलालुद्दीन का कथन है कि ऐसा प्रेम द्वारा और फलत प्रेम-जनित ज्ञान द्वारा सम्भव है, जैसा कि परमात्मा ने पवित्र गाथा (कुरान शरीफ़) में कहा है

"मेरा सेवक मेरे निकट पहुचता है और मैं उससे प्रेम करता हूँ। तब मैं ही उसका कान, आँख, जिह्वा तथा हाथ होता हूँ ताकि वह मेरे ही द्वारा सुने, देखे, बोले और ग्रहण करे।"

यद्यपि रहस्यवादी प्रेम का वर्णन एक पृथक अध्याय में करना अधिक सुगम होगा, पाठकों को यह न सोचना चाहिये कि उनके सामने एक नया विषय खुल रहा है। ज्ञान और प्रेम आध्यात्मिक रूप से समान हैं वे एक ही सत्य की भिन्न भिन्न भाषा में उपदेश करते हैं।



चतुर्थ अध्याय

दैवी प्रेम

इस्लाम में रहस्यवादी कविता से परिचित किसी भी व्यक्ति ने यह ध्यान दिया होगा कि आत्मा की परमात्मा के प्रति आकांक्षा साधारणतय लगभग उन्हीं शब्दों में अभिव्यक्त की जाती है जिनका प्रयोग किसी पूर्वीय अनाक्रेयन अथवा हेरिक ने किया है। वास्तव में यह समानता प्राय इतनी निकट होती है कि जब तक हमें कवि के इरादों का कुछ पता न हो, हम उसका अभिप्राय समझने में दुविधा में पड़े रहते हैं। सम्भव है कुछ दशाओं में यह अस्पष्टता कलात्मक उद्देश्य की पूर्ति करती हो, जैसा कि हाफ़िज़ के गीतों में है, किन्तु उन दशाओं में भी, जबकि कवि अपने पाठक को जान बूझकर पृथ्वी और स्वर्ग के बीच लटकाये नहीं रखना चाहता किसी रहस्यवादी भजन को भूल से मदरों का गाना या प्रेमी का काव्य-गीत समझ लेना बिल्कुल सरल है। अरबों में उनके सबसे महान् प्रह्लावादी इब्नुल अरबी को अपनी कुछ कविताओं पर, इस कलङ्कपूर्ण आरोप का खण्डन करने के लिए कि वे उसकी रमेलिन व रूस्लानदय की प्रशंसा हेतु लिखी गई थीं, भाष्य लिखने के लिये बाध्य होना पड़ा। कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं —

"अहा! उस कामनाङ्गिनी के सौंदर्य की चमक ऐसा प्रकाश देती है, जैसे अँधेरे में चलने वाले को दीपक प्रकाश देता है।

यह संगमूसा के समान काले केशों रूपी सीप में छिपा हुआ एक मोती है।

ऐसा मोती, जिसके लिये ध्यान गोता लगाकर उस सागर की गह राइयों में सतत् डूबा रहता है।

वे उस दशा है वह उस उसका [illegible] और सुन्दर चेष्टाओं के कारण रागात्मक शक्तियों का उपयोजक बनता है।'

यह कहा जा चुका है कि [illegible] इस आश्चर्य [illegible] पर कविश्वर उन वस्तुओं के नक्शा (चार्ट) के रूप में [illegible] थे वह [illegible] रचना चाहते थे। उस समय में दो कवि [illegible] के [illegible] एक [illegible] सिद्धान्त के अविश्वास होने का अभिमानपूर्वक [illegible] थे, उनका होना स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त वे कुछ थे मानव का निरीक्षण करते थे उसका स्पष्ट कथन, यदि उसमें [illegible] नहीं तो उनकी स्वतन्त्रता का [illegible] रूप में [illegible] गया। किन्तु [illegible] उन किन्हीं कारणों से पृथक्, [illegible] के [illegible] प्रदान करते हैं कि मानव बुद्धि से पर अनुभूति (वस्तुगत अनुभवों का) [illegible] का दूसरा कोई सम्भव स्थान नहीं है। [illegible] में [illegible] के ज्ञान का [illegible] का इतना [illegible] होता है कि [illegible] से जिन गद्य शास्त्रों और नियमों के [illegible] किसी साधन द्वारा वह नहीं [illegible] जा सकता और [illegible] होने पर भी [illegible] सामान्य अर्थ की [illegible] अधिक [illegible] अर्थ [illegible] और विचित्र करते हैं। [illegible] का कथन है —"[illegible] (मन) [illegible] भावनाओं को शब्दों में नहीं [illegible] सकते वे [illegible] उन्हें उन शब्दों का [illegible] कर सकते हैं जो उन्हीं की भाँति [illegible] कर लेते हैं।" [illegible] किस प्रकार का [illegible] करता है, यह उसके स्वभाव और चरित्र पर निर्भर है। यदि वह एक [illegible] या आध्यात्मिक [illegible] है तो 'हृदय' [illegible] उन विषय का सौन्दर्य और मानव प्रेम की [illegible] भावनाओं का [illegible] धारण कर लेंगे। उसके निकट [illegible] का [illegible] मन [illegible] द्वारा प्रदर्शित हैं [illegible] का प्रदर्शित करता है [illegible] [illegible] 'अनेक' में [illegible] का रूप करता है। वह यह कहता है कि 'प्रताप [illegible] यह [illegible] [illegible]' [illegible]

चतुर्थ अध्याय

दैवी प्रेम

इस्लाम में रहस्यवादी कविता से परिचित किसी भी व्यक्ति ने यह ध्यान दिया होगा कि आत्मा की परमात्मा के प्रति आकांक्षा साधारणतया लगभग उन्हीं शब्दों में अभिव्यक्त की जाती है जिनका प्रयोग किसी पूर्वीय अनाक्रेअन अथवा हेरिक ने किया है। वास्तव में यह समानता प्रायः इतनी निकट होती है कि जब तक हमें कवि के इरादों का कुछ पता न हो, हम उसका अभिप्राय समझने में दुविधा में पड़े रहते हैं। सम्भव है कुछ दशाओं में यह अस्पष्टता कलात्मक उद्देश्य की पूर्ति करती हो, जैसा कि हाफ़िज़ के गीतों में है, किन्तु उन दशाओं में भी, क्योंकि कवि अपने पाठकों को जान बूझकर पृथ्वी और स्वर्ग के बीच लटकाये नहीं रखना चाहता किसी रहस्यवादी भजन को भूल से मधुशाला का गाना या प्रेमी का काव्य-गीत समझ लेना बिल्कुल सरल है। अरबी में उत्पन्न सबसे महान् ब्रह्मवादी इब्नुल-अरबी को अपनी कुछ कविताओं पर, इस कलंकपूर्ण आरोप का खण्डन करने के लिए, कि ये उसकी स्त्रैणिक के रूपलावण्य की प्रशंसा हेतु लिखी गई थीं, भाष्य लिखने के लिये बाध्य होना पड़ा। कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं —

"अहा! उस कामनाग्निनी के सौन्दर्य की चमक ऐसा प्रकाश देती है जैसे अँधेरे में चलने वाले का दीपक प्रकाश देता है।

वह सागमुक्ता के समान काले केशों रूपी सीप में छिपा हुआ एक मोती है।

ऐसा मोती, जिसके लिये ध्यान गोता लगाकर उस सागर की गहराइयों में सतत् डूबा रहता है।

मन्दिर है और हाजी के लिये काबा है। शरीअत की तख्ती और कुरान का ग्रन्थ है। मैं प्रेम धर्म का अनुगामी हूँ उसका ऊँट चाहे जिस मार्ग से जाय। मेरा धर्म और मेरा विश्वास ही सच्चा धर्म है। हिन्द और उसकी बहन के प्रेमी बिश्र, कैस और लुब्ना तथा माय्या और गैलान हमारे आदर्श हैं।"

अन्तिम पद का भाष्य करते हुये कवि लिखता है —

"प्रेम, कवा (हद) प्रेम, की हकीकत उन अरबी प्रेमियों के लिये और मेरे लिये एक ही है, किन्तु हमारे, प्रेम के लक्ष्य भिन्न भिन्न हैं, क्योंकि वे एक गोचर पदार्थ से प्रेम करते थे जबकि मैं 'हक' से प्रेम करता हूँ। ये हमारे आदर्श इसलिये हैं कि परमात्मा ने उन्हें मानवों के प्रति प्रेम का कष्ट इस उद्देश्य से दिया कि वह उनके द्वारा उन लोगों की असत्यता को प्रदर्शित कर सके, जो उससे प्रेम करने का दावा तो करते हैं किन्तु उससे प्रेम करने में ऐसी आनन्द विभोरता और प्रसन्नता का कोई अनुभव नहीं करते, जिसने उन आसक्त मनुष्यों को विवेकशून्य और अपने प्रति अचेत बना दिया था।"

मध्यकालीन महान् सूफियों में से अधिकांश सूफी परमात्मा का स्वप्न देखते हुये उसके नशे में मस्त साधुमय जीवन बिताया करते थे। जब वे अपने स्वप्नों की चर्चा करने का प्रयत्न करते तो मनुष्य होने के नाते मानवीय भाषा का ही प्रयोग करते थे। यदि वे भी साहित्यिक कलाकार होते तो स्वाभाविक रूप से अपने युग और अपनी पीढ़ी की शैली में लिखते। रहस्यवादी कविता के क्षेत्र में फारसी कवि अरबी कवियों से बाजी मार ले गये हैं। जो व्यक्ति सूफी मत के रहस्य का अध्ययन करना चाहता है उसे चाहिये कि वह धर्मशास्त्र सम्बन्धी लेखों के बोझ को हटा कर तथा आत्मा-विषयक सूक्ष्मताओं के जाल से निकल कर अत्तार, जलालुद्दीन रूमी तथा जामी का अध्ययन करे। इनकी रचनायें अंग्रेजी और अन्य यूरोपीय भाषाओं में उपलब्ध हैं। इन अद्भुत भजनों का अनुवाद करना उनके स्तर को बिगाड़ना और उनके भावों के ऊँची

यह होता है कि "दैवी चिन्तन के आनन्दातिरेक में अपने जागतिक अह को भुला दो।" इस प्रकार के उदाहरणों से पृष्ठ के पृष्ठ भरे जा सकते हैं।

यह प्रेम सम्बन्धी तथा मद्यप सम्बन्धी प्रतीकवाद इस्लामी रहस्यवादी कविता की ही विशेषता नहीं है किन्तु इतनी पूर्णता और इतने उन्नत ढंग से इसका प्रदर्शन अन्यत्र कहीं नहीं हुआ है। यूरोपीय आलोचकों ने इसे बहुधा ग़लत ढंग से समझा है और उनमें से एकाध अब भी सूफ़ियों के आह्लाद (भावनिष्ठावस्था) को "अशत मदिरा से अनुप्राणित और विषय-वासना से अविरञ्जित" कहते हैं। जहाँ तक सम्पूर्ण सूफ़ी सम्प्रदाय का सम्बन्ध है यह आरोप बिल्कुल असत्य है। उनकी रचनाओं का अध्ययन करने वाला कोई भी बुद्धिमान और निष्पक्ष विद्यार्थी यह आरोप नहीं लगा सकता और हम यह अवश्य ही जानना चाहते हैं कि यह किस प्रकार के प्रमाण पर आधारित है। प्रत्येक सम्प्रदाय में पापात्मा (सिद्धान्त विरुद्ध कार्य करने वाले) होते हैं, और सूफ़ियों में भी हमें ऐसे अनेक पापात्मा लम्पट और मद्यप मिलते हैं जो अपने पवित्र बन्धुओं के नाम को कलंकित करते हैं। किन्तु इन पापात्माओं के अत्यधिक भ्रष्ट कार्यों के आधार पर सूफ़ीमत पर सामान्य निर्णय दे देना उतना ही अनुचित है जितना ईसाई रहस्यवाद को इस आधार पर दोषपूर्ण कहना कि उसमें कुछ वर्ग और व्यक्ति भ्रष्ट होते हैं। जलालुद्दीन कहता है —

"तू ही साक़ी है और वही शराब है।
वही जानता है कि कैसा मेरा प्रेम है॥"

इब्नुल अरबी यह घोषित करता है प्रेम-रूपी धर्म और परमात्मा के प्रति श्रीलुब्ध व श्रेष्ठ अन्य कोई धर्म नहीं है। प्रेम सब धर्मों का सार है, यह चाहे जो रूप धारण करे, सच्चा रहस्यवादी इसका सदैव स्वागत करता है।

'मेरा हृदय प्रत्येक रूप के योग्य हो गया है यह मृगशावकों के चरागाह है और ईसाई साधुओं के लिये मठ है, मूर्तियों के लिये

मन्दिर है और हाजा के लिये काबा है। शरीअत की तस्बी और कुरान का ग्रंथ है। मैं प्रेम धर्म का अनुगामी हूँ उसका ऊँट चाहे जिस मार्ग से जाय। मेरा धर्म और मेरा विश्वास ही सच्चा धर्म है। हिन्द और उसकी बहन के प्रेमी बिश्र, कैस और लुब्ना तथा माय्या और गैलान हमारे आदर्श हैं।'

अन्तिम पद की भाष्य करते हुए कवि लिखता है —

"प्रेम, क्या (हक़) प्रेम, को इक्रात उन अरबी प्रेमियों के लिये और मेरे लिए एक ही है, किन्तु हमारे, प्रेम के लक्ष्य भिन्न भिन्न हैं, क्योंकि वे एक गोचर पदार्थ से प्रेम करते थे जबकि मैं 'हक़' से प्रेम करता हूँ। वे हमारे आदर्श इसलिये हैं कि परमात्मा ने उन्हें मानवों के प्रति प्रेम का कष्ट इस उद्देश्य से दिया कि वह उनके द्वारा उन लोगों को प्रसन्नता का प्रदर्शित कर सके, जो उससे प्रेम करने का दावा तो करते हैं किन्तु उससे प्रेम करने में ऐसी आनन्द विभोरता और प्रसन्नता का कोई अनुभव नहीं करते, जिसने उन आसक्त मनुष्यों को विवेकशून्य और अपने प्रति अचेत बना दिया था।"

मध्यकालीन महान् सूफ़ियों में से अधिकांश सूफ़ी परमात्मा का स्वप्न देखते हुए उसके नशे में मस्त साधुवत जीवन बिताया करते थे। जब वे अपने स्वप्नों की चर्चा करने का प्रयत्न करते तो मनुष्य होने के नाते मानवीय भाषा का ही प्रयोग करते थे। यदि वे भी साहित्यिक कलाकार होते तो स्वाभाविक रूप से अपने युग और अपनी देश की शैली में लिखते। रहस्यवादी कविता के क्षेत्र में फ़ारसी कवि अरबी कवियों से बाज़ी मार ले गए हैं। जो व्यक्ति सूफ़ी मत के रहस्य का अध्ययन करना चाहता है उसे चाहिये कि वह धर्मशास्त्र सम्बन्धी लेखों के बोझ को हटा कर तथा आत्मा-निरीक्षक सूत्रवाक्यों के जाल से निकल कर अत्तार, जलालुद्दीन रूमी तथा जामी का अध्ययन करे। इनकी रचनायें प्रायः अंग्रेज़ी और अन्य यूरोपीय भाषाओं में उपलब्ध हैं। इन अद्भुत भजनों का अनुवाद करना उनके स्वर को बिगाड़ना और उनके भावों के ऊँची

उद्यान को पृथ्वी पर उतार लाना है किन्तु गद्यात्मक अनुवाद भी उनको अनुप्राणित करने वाले 'हक़' के प्रति प्रेम और सौन्दर्य के प्रतिभासित हृदय को पूर्ण रूप से नहीं छिपा सकता। जलालुद्दीन की वाणी पुनः सुनिये —

"ऐसे चन्द्रमा की भाँति, जिसकी समानता करने वाला आकाश ने स्वप्न में या जाग्रत अवस्था में नहीं देखा।

यह (परमात्मा) अनन्त ज्वालों से विभूषित आता है जिसे कोई बाढ़ नहीं बुझा सकती।

हे प्रभु, देख! तेरी प्रेमरूपी सुराही द्वारा मेरी आत्मा तैर रही है, और मेरा शरीररूपी कच्चा गेह नष्ट हो गया है।

जब मेरे निर्जन हृदय में उस अंगूर दाता ने पहले पहल वास किया, मदिरा मेरे वक्ष में भभक उठी और मेरी नाड़ियाँ भर उठीं।

किन्तु मेरी आँखों के समक्ष जब एक मात्र उसकी ही मूर्ति रह गयी तब यह ध्वनि आयी।

ऐ सर्वोच्च मदिरा और अनुपम प्याले! तुमने खूब काम किया।"

इस प्रकार का प्रतीकात्मक ढंग से वर्णित प्रेम धर्म का भावात्मक तत्त्व, सिद्ध पुरुष का आनन्दातिरेक, शहीद का साहस, सन्त का विश्वास तथा नैतिक पूर्णता एवं आध्यात्मिक ज्ञान का एक मात्र आधार है। क्रियात्मक रूप से यह आत्म विराग और आत्म-त्याग है। अर्थात् अपना सर्वस्व—सम्पत्ति, सम्मान, संकल्प, जीवन तथा अन्य जो कुछ भी मनुष्य के लिये मूल्यवान् है—अपने प्रियतम के लिये बिना प्रतिफल की कामना किये परित्याग कर देना है। मैं पहले ही संकेत कर चुका हूँ कि प्रेम सूफ़ी नीतिशास्त्र का सर्वोच्च सिद्धान्त है और अब मैं इसके कुछ उदाहरण दूँगा।

ऐ दवाय नख़वती नामूस मा।
ऐ तबीब जुमला इल्लत हाय मा।
हर कि रा जामा ज़े इश्क़े चाक शुद।
ऊ ज़े हिर्स ओ ऐब कुल्ली पाक शुद। (मौलाना रूमी)

जलालुद्दीन का कहना है कि "प्रेम हमारे अभिमान और अहङ्कार की औषधि है, हमारी समस्त कमजोरियों का चिकित्सक है। जिसका वस्त्र प्रेम में फट जाता है वही पूर्ण रूप से निःस्वार्थ होता है।"

नूरी रक्काम एवं अन्य सूफियों पर काफिर होने का आरोप लगाया गया और उन्हें मृत्युदण्ड दिया गया।

"जब जल्लाद रक्काम के निकट आया, नूरी ने उठकर स्वयं को अपने मित्र के स्थान पर अत्यन्त प्रसन्नता और नम्रता के साथ पेश कर दिया। सभी दर्शक स्तब्ध रह गये। जल्लाद ने कहा, 'हे युवक तलवार ऐसी वस्तु नहीं है जिसके मिलने के लिये लोग इतने व्याकुल हों और तुम्हारी बारी अभी नहीं आयी है।' नूरी ने उत्तर दिया, 'मेरे धर्म का आधार निःस्वार्थता है। जीवन संसार में सबसे मूल्यवान् वस्तु है। जीवन के कुछ निःशेष क्षणों को मैं अपने बन्धुओं के लिये बलिदान कर देना चाहता हूँ'।"

एक अन्य अवसर पर लोगों ने नूरी को इस प्रकार प्रार्थना करते हुए सुना था —

"हे खुदा, अपने अनन्त ज्ञान, शक्ति और इच्छा से अपने ही रचे हुए प्राणियों को तुम नरक में दण्ड देते हो यदि तुम्हारी निष्ठुर इच्छा मनुष्यों से नरक को भर देने की है तो केवल मुझसे ही उसे भर सकते हो और उन मनुष्यों को स्वर्ग में भेज सकते हो।"

जिस अनुपात से सूफी परमात्मा से प्रेम करता है, वैसे ही वह उसके समस्त प्राणियों में परमात्मा का दर्शन करता है और उनके साथ उसी रूप का व्यवहार करता है। बिना प्रेम के पवित्र काम कुछ भी नहीं है।

"किसी दुखी हृदय को प्रसन्न करो, तुम्हारा यह सुन्दर काम सहस्रों मन्दिरों के निर्माण से सुन्दर होगा।

एक स्वतन्त्र व्यक्ति, जिसे तुम्हारी दयालुता ने गुलाम बना लिया है, सहस्रों स्वतंत्र किये गये गुलामों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।"

'मुसलमानी सन्तों की गाथा' पशुओं, पक्षियों, कुत्तों, पंछियों तथा

कीड़ों तक के प्रति प्रदर्शित दया की कहानियों से भरी पड़ी है। कहा जाता है कि बायज़ीद ने हमादान में कुछ इलायची के दाने ख़रीदे। वहाँ से रवाना होने के पूर्व उसने कुछ इलायचियों को, जो उसके पास बची हुई थीं, अपने चोग़े में रख लिया। विस्ताम पहुँचने पर उसे अपने किये हुये की याद आयी। उसने दानों को निकाला तो देखा कि उसमें बहुत सी चींटियाँ लगी हुई हैं। "मैं इन बेचारियों को इनके घर से बहुत दूर उठा लाया हूँ," ऐसा कहते हुये वह तुरन्त ही लौट पड़ा और कई सौ मील की दूरी तै कर हमादान पहुँचने पर ही राहत की साँस ली।

यह सर्वभूत के प्रति दया विश्वात्मवाद की एक रीति है। प्रारम्भिक सूफ़ियों में व्याप्त संसार के प्रति वैराग्य की भावना ने तथा उनकी इस स्पष्ट चेतना ने कि अल्लाह एक अन्तरस्थ आत्मा न होकर सर्वश्रेष्ठ व्यक्तित्व है, उनके मानवीय सम्बन्धों को निर्दयतापूर्वक कुचल डाला। नीचे फ़ुज़ैल इब्न इयाद के जीवन की एक छोटी-सी कहानी दी जा रही है। यह यदि शिक्षाप्रद नहीं तो मर्मस्पर्शी अवश्य ही है।

"एक दिन यह अपनी गोद में चार वर्ष का बच्चा लिये था। जैसा कि पिताओं का ढंग है, उसने बच्चे का चुम्बन ले लिया। बच्चे ने पूछा, अब्बा, क्या आप मुझे प्यार करते हैं?' 'हाँ', फ़ुज़ैल ने उत्तर दिया। 'क्या आप परमात्मा से प्रेम करते हैं?' 'हाँ' 'आपके कितने हृदय हैं?' 'एक।' 'तब आप एक हृदय से दो को कैसे प्रेम कर सकते हैं?' बच्चे ने प्रश्न किया। फ़ुज़ैल समझ गया कि बच्चे के शब्द उस परमात्मा द्वारा दी गयी चेतावनी हैं। परमात्मा के प्रति भावावेश में वह अपना सिर पीटने लगा। बच्चे के प्रति अपने प्रेम पर उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ और उसने अपने हृदय को पूर्णरूप से परमात्मा में लगा दिया।"

जैसा कि जलालुद्दीन रूमी ने कहा है, उत्तरतर सूफ़ी रहस्यवाद यह सिखाता है कि गोचर जगत् 'हक़' तक पहुँचने का एक पुल है।

"तेरा प्रेम चाहे इस संसार के प्रति हो चाहे उस संसार के,
अन्त में वह तुझे उस पार अवश्य ले जायगा।'

एक अनुच्छेद में, जिसका अनुवाद प्रोफ़ेसर ब्राउन ने किया है, यह इस प्रकार कहता है —

"सांसारिक प्रेम से अपना मुँह मत मोड़,
यह तुझे हक़ तक ऊँचा उठा सकता है।
यदि प्रारम्भिक अक्षरों का ज्ञान तुझे ठीक-ठीक हो गया,
तो तू कुरान के पृष्ठ के पृष्ठ रट सकता है।
सुना है कि अपने पाठ्य विषय पर उपदेश की लालसा से
एक विद्यार्थी एक महात्मा के पास आया।
महात्मा बोला, 'यदि तेरे पग प्रेम-मार्ग से अपरिचित हैं,
तो तू चला जा, प्रेम करना सीख और तब मेरे सामने आ
कारण, यदि तू रूप की सुराही से मदिरा पान से डरता है,
तो तू आदर्श प्रेम की मदिरा का एक घूँट भी नहीं पी सकता।
किन्तु सावधान! तू रूप में ही मत फँसा रह
वरन् शीघ्र पग से पुल पार करने का प्रयत्न कर
यदि तू सदा तक अपना सामान सकुशल उठा ले जाना चाहता है
तो तू अपने क़दमों को पुल पर न लड़खड़ाने दे'।"

इमर्सन ने इसका भावार्थ इस प्रकार किया है —

"विविध आत्माओं में दैवी सौन्दर्य के लक्षण देखता हुआ और प्रत्येक आत्मा में दैवी गुणों को संसार में प्रकट किये हुए दोषों से पृथक करता हुआ, प्रेमी निर्मित आत्माओं के इस सोपान द्वारा धीरे धीरे परम सौन्दर्य, ईश्वरीय प्रेम और ज्ञान की उपलब्धि करता है।"

हुज्वीरी कहता है, 'मनुष्य का ईश्वर के प्रति प्रेम ऐसा गुण है जो स्वतः पवित्र धर्मानुयायियों के हृदय में श्रद्धा और अति चिन्तन के रूप में प्रकट होता है, जिसके परिणाम स्वरूप वह अपने प्रियतम को संतुष्ट करना चाहता और उसका दर्शन देखने की लालसा से अधीर एवं व्याकुल हो जाता है। वह उसके बिना अन्य किसी के साथ नहीं रह सकता और उसके स्मरण से सुपरिचित हो जाता है तथा उसके अतिरिक्त

प्रत्येक वस्तु का समस्त यौगपद्य पूर्वक अस्वीकार कर देता है। उसके लिये आराम हराम हो जाता है और निद्रा उससे दूर भाग जाती है। वह समस्त आदतों और सम्बन्धों से पृथक् हो जाता है और विषय वासना का परित्याग कर देता है। वह प्रेम के दरबार की ओर उन्मुख होकर प्रेम के कानून का आधिपत्य स्वीकार करता है तथा परमात्मा को उसके पूर्णत्व के गुणों द्वारा जान लेता है।"

ऐसा मनुष्य अवश्य ही अपने साथी मनुष्यों से प्रेम करेगा। वे उसके साथ चाहे जैसी निर्दयता का व्यवहार करें, वह उनमें केवल परमात्मा के उन शुद्धिकारक करों का ही दर्शन करेगा "जिनकी कड़ चाहटें भी आत्मा के लिये अति मधुर होती हैं।" बायज़ीद ने कहा है कि जब परमात्मा किसी मनुष्य को प्यार करता है तब वह उसके चिन्ह स्वरूप तीन गुण प्रदान करता है समुद्र के समान उदारता सूर्य के समान परदुःख कातरता तथा पृथ्वी के समान नम्रता। सच्चे प्रेमी के दृढ़ विश्वास तथा तीक्ष्ण अन्तर्दृष्टि के लिये कोई भी कष्ट अति महान् और कोई भी भक्ति परम उच्च नहीं हो सकती।

इब्नुल अरबी यह दावा करता है कि इस्लाम विशिष्टरूप से प्रेम का धर्म है, क्योंकि पैग़म्बर मुहम्मद साहब को अल्लाह का प्रिय (हबीब) कहा गया है। किन्तु, यद्यपि इस सिद्धान्त के कुछ संकेत कुरान में मिलते हैं, इसकी मुख्य प्रवृत्ति निश्चयरूप से ईसाई धर्म से ग्रहण की गई। जब कि प्राचीनतम सूफी साहित्य जो अरबी में है और दुर्भाग्यवश हमें खण्डित अवस्था में उपलब्ध है कुरान में वर्णित अल्लाह के भय माने के आग्रह से प्रभावित है, इसमें विपरीत ईसाई परम्परा के प्रत्यक्ष चिह्न भी मिलते हैं। जिस प्रकार डियोनीसियस एवं अन्य नव अफलातूनी विचारधारा के लेखकों द्वारा ईसाई धर्म में हुआ, उसी प्रकार और सम्भवतः उसी प्रभाव के अन्तर्गत इस्लाम में भी परमात्मा के प्रति भक्तिमय और रहस्यमय प्रेम शीघ्र ही आह्लाद और उत्साह में विकसित हो गया। इसकी अभिव्यक्ति के लिये मानव प्रेम का मर्मस्पर्शी विधान ही

सबसे अधिक सुगम और उपयुक्त माध्यम समझा गया। डाक्टर इसे का कथन है, "ऐसा प्रतीत होता है कि सूफियों ने शुद्ध एशियायियों की भाँति अपनी वासनाओं की तुष्टि को धर्मविधि-अनुमोदित और प्रतीकात्मक रूप देने का प्रयास किया है।" मुझे पुनः यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि सच्चे सूफीमत के बारे में ऐसी धारणा छिछली और ग़लत, दोनों है।

ज्ञान की भाँति प्रेम भी सर्वत एक दैवी वरदान है यह कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो मांग की जा सके। "यदि सारे संसार के लोग भी प्रेम को आकर्षित करना चाहें तो नहीं कर सकते और यदि वे इसे हटाने का अत्यधिक प्रयास करें तो वे ऐसा नहीं कर सकते।" परमात्मा से वही प्रेम करते हैं जिनसे परमात्मा प्रेम करता है। बायज़ीद ने कहा, मैं समझता था कि मैं परमात्मा से प्रेम करता हूँ, किन्तु ग़ौर करने पर मैंने देखा कि मेरे प्रेम करने के पहले से ही वह मुझसे प्रेम करता है।" जुनैद ने प्रेम को प्रेमी के गुणों के स्थान पर प्रियतम के गुणों का प्रत्यस्थापन कहा है। दूसरे शब्दों में प्रेम का तात्पर्य व्यक्तिगत 'अहं' का लोप हो जाना है। यह अगाध हर्षोन्माद तथा परमात्मा द्वारा भेजी गई कृपा है, जिसके लिए कठोर प्रार्थना तथा तीव्र इच्छा द्वारा प्रयास करना चाहिए।

'ऐ ख़ुदा, तेरे घुमावदार बल्ले में मेरा हृदय गेंद पड़ा है।

"वह कभी बाल बराबर भी तेरे आदेश से विचलित नहीं हुआ और न उसने मुख़ालफ़त की।

"पानी मीन पर और नहाकर मैंने अपना माथा तेरे रास्ते पर घिसा है।

"किन्तु, ऐ ख़ुदा, मेरा अन्तर्मन तेरी ही ज़मान्दारी है—तू ही इसे निष्कलंक रख।"

एक उपदेशमय कहानी द्वारा जलालुद्दीन यह शिक्षा देता है कि मनुष्य का प्रेम वास्तव में परमात्मा के प्रेम का प्रभाव है। एक

रात कोई भक्त उच्च स्वर से प्रार्थना कर रहा था। उसी समय शैतान उसके सम्मुख प्रकट हुआ और बोला—"तू 'या अल्लाह, या अल्लाह' कब तक चिल्लाता रहेगा? चुप हो जा, क्योंकि तुझे कोई उत्तर नहीं मिलेगा।" भक्त ने मौन होकर सिर झुका लिया। थोड़ी ही देर बाद उसे पैग़म्बर ख़िज्र दिखाई पड़े। उन्होंने उससे कहा 'अरे! तूने अल्लाह को पुकारना बन्द क्यों कर दिया?" उसने उत्तर दिया, "इसलिए कि, 'मैं यहाँ हूँ', यह उत्तर मुझे नहीं मिला।" ख़िज्र ने कहा, "अल्लाह ने मुझे आज्ञा दी है कि मैं तेरे पास आकर यह बतलाऊँ —

नै तुरा दर कारे मन आवुर्दह अम।
नै कि मन मशग़ूले ज़िक्रत कर्दह अम।
गुफ़्त आँ अल्लाहे तो लब्बैके मास्त।
ईं नियाज़ो सोज़े दर्दत पैके मास्त।
हील हायो चारह जूई हाय तो।
जज़्बे मा बूदो कुशाद आँ पाय तो।
तर्सो इश्क़े तो कमन्दे लुत्फ़े मास्त।
ज़ेरे हर यारब्ब तो लब्बैक हास्त।

—मौलाना रूमी (मसनवी)

"क्या तुझे सेवा हेतु आह्वान् करने वाला मैं ही नहीं था?
क्या मैंने ही तुझे अपना नाम पुकारने में नहीं लगाया?
तेरा 'या अल्लाह' पुकारना ही मेरा 'मैं यहाँ हूँ' उत्तर था,
तेरा उत्कण्ठामय कष्ट ही मेरा तेरे लिए दूत था।
तेरी समस्त आहों, विनतियों और आँसुओं का
मैं ही आकर्षण केन्द्र था, मैंने ही उन्हें पङ्ख प्रदान किए।"

दैवी प्रेम वर्णनातीत है, तथापि इसके लक्षण स्पष्ट होते हैं। सारी अल् सक़ती ने जुनैद से प्रेम की प्रकृति के विषय में प्रश्न किया। उसने उत्तर दिया, "कुछ लोग कहते हैं कि यह सयोगावस्था है, कुछ कहते हैं यह परोपकार का सिद्धान्त है और कुछ कहते हैं कि यह अमुक-अमुक

प्रकार का है।" सारी ने अपने अग्रबाहु की चमड़ी पकड़ कर खींची, किन्तु तन सह न सका। तब उसने कहा, "मैं अल्लाह के ऐश्वर्य की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि यदि मैं यह कहूँ कि इस हड्डी के ऊपर की यह चमड़ी परमात्मा के प्रेम में ही सिकुड़ कर झुर्रीदार हो गयी है, तो मेरा कथन सत्य ही होगा।" तत्पश्चात् उस पर मूर्छा छा गयी और उसका चेहरा चन्द्रमा के समान कान्तिमय हो उठा।

स्वर्गीय रहस्यों का माप-यन्त्र, प्रेम, अपने नाम को सार्थक करने वाले सभी धर्मों को अनुप्राणित करता है और उन्हें तर्क पूर्ण विश्वास के स्थान पर व्यक्तिगत सहज ज्ञान से उत्पन्न दृढ़ निश्चय प्रदान करता है। यह आन्तरिक प्रकाश स्वयं अपना प्रमाण है। जो इसे देख पाता है वही सच्चा ज्ञानी है और उसकी निश्चयात्मकता को कोई भी वस्तु घटा-बढ़ा नहीं सकती। इसी कारणवश सूफी सन्त उस धर्म की निरर्थकता को प्रकट कर देने से कभी नहीं थकते, जो अपने को किसी प्रकार के बौद्धिक प्रमाणों, बाह्य अधिकारपूर्ण वचनों, स्वार्थ अथवा स्वाभिमान पर स्थापित करता है। धर्मशास्त्री का सारहीन तर्कशास्त्र संस्कारों के रूप में बद्ध यमाय फारिसी[1] की पाखण्डपूर्ण सदाचारिता कुछ निम्न श्रेणी की किन्तु समान ही स्वार्थपूर्ण उपासना, जिसकी प्रेरणा इस जीवन के बादवाले जीवन में अनन्त आनन्द प्राप्त करने की इच्छा है उस रहस्यवादी की अपेक्षाकृत शुद्ध भक्ति जो, यद्यपि परमात्मा से प्रेम करता है किन्तु अपने को प्रेम करने वाला सोचता है तथा जिसका हृदय पूर्ण रूप से 'परत्व' की भावना से रिक्त नहीं हुआ है—यह सब ऐसे आवरण हैं जिनको हटाना चाहिये।

परमात्मा को जानने वालों के कुछ कथन उद्धृत करना और अधिक व्याख्या करने की अपेक्षा अधिक शिक्षाप्रद होगा।

"हे खुदा! इस संसार में तूने मेरे लिए जो कुछ भाग लगाया है उसे अपने शत्रुओं को प्रदान कर दे और दूसरी दुनिया में (स्वर्ग में)

१—यहूदी औपचारिकतावादी।

तूने मेरे लिये जो भाग लगाया है उसे अपने मित्रों को प्रदान कर दे। मेरे लिए तो तू ही बहुत है।"—(राबिया)

"हे खुदा ! यदि मैं नरक के भय से तेरी उपासना करती हूँ तो तू मुझे नरक में जला और यदि मैं तेरी उपासना स्वर्गप्राप्ति की आशा से करती हूँ तो तू मुझे स्वर्ग से वञ्चित ही रख किन्तु यदि मैं तेरी उपासना केवल तेरे ही लिए करती हूँ तो तू अपना चिर सौन्दर्य मुझसे दूर मत रख।"—(राबिया)

'परमात्मा से प्रेमियों के अपने प्रेम द्वारा पृथक् किए जाने पर भी महत्वपूर्ण वस्तु उन्हीं के पास रहती है क्योंकि चाहे वे सोते हों या जागते हों, वे खोजते हैं और खोजे जाते हैं और केवल अपनी ही खोज करने और प्रेम करने में व्यस्त न रह कर प्रियतम के चिंतन में उल्लसित रहते हैं। जब कोई प्रेमी अपने प्रियतम के समक्ष हो तो उसका अपने प्रेम को मान्यता देना अपराध है और अपने खोज कार्य को ही देखना प्रेम के साथ अत्याचार करना है।"—(बायज़ीद)

"उसके प्रेम ने (मेरे हृदय में) प्रवेश करके उसके अतिरिक्त सबको मिटा दिया और अन्य किसी का कोई चिह्न नहीं छोड़ा। यहाँ तक कि जिस प्रकार वह अकेला है वैसे ही उसका प्रेम भी अकेला रह गया।"
—बायज़ीद

"एक क्षण के लिये भी परमात्मा के साथ एकमय होने का अनुभव करना संसार के आदि से अन्त तक के समस्त मनुष्यों के उपासना कार्यों से उत्कर है।
—शिब्ली

"प्रियतम से विलग किये जाने के भय की तुलना में नरक की अग्नि का भय महान् समुद्र में जल की एक बूँद के समान है।"
—ज़ूँ'ल नून

"जब तक मेरा हृदय तेरी ओर उन्मुख न हो जाय
मैं प्रार्थना को प्रार्थना कहलाने योग्य नहीं समझता।।

यदि मैं अपना मुँह काबा की ओर करता हूँ तो केवल तेरे प्रेम के कारण।

अन्यथा मैं प्रार्थना और काबा दोनों से स्वतन्त्र हूँ।"

—जलालुद्दीन रूमी

पुन, प्रेम आत्मा की दैवी अन्त प्रवृत्ति है, जो उसे अपना स्वभाव और अदृष्ट समझने को प्रवृत्त करती है। आत्मा ईश्वर से उत्पन्न हुये लोगों में सर्वप्रथम है। विश्व की सृष्टि के पूर्व यह परमात्मा में ही स्थित और चलायमान थी और उसी में इसका अस्तित्व था। संसार में व्यक्त होने के काल में यह एक निष्कासित अजनबी है, जो सदैव अपने घर लौटने के लिये चिंतित रहता है।

"प्रेम क्या है? स्वर्ग की ओर उड़ना,
प्रत्येक क्षण सैकड़ों पर्दे फाड़ना,
प्रथम क्षण में जीवन से वैराग्य धारण करना
अन्तिम क्षण में बिना पग के चलना
इस संसार को अदृश्य मानना,
अपने आप को प्रतीत होने वाले को न देखना।"

सूफी काव्य की सभी प्रेम कथायें और रूपक—लैला व मजनूँ, यूसुफ व जुलेखा, सुलेमान व अब्साल, शमा व परवाना (दीपक और पतङ्ग), गुल व बुलबुल की कहानियाँ—आत्मा की परमात्मा से पुनर्मिलन की उत्कट अभिलाषा के छाया चित्र हैं। इस अभिलक्षित राजमहल के प्रत्येक पक्ष में प्राची की समृद्ध कल्पना द्वारा सज्जित कोशा की एक चलती-फिरती झलक दिखा देने के अतिरिक्त, पाठकों को इस धारा-की बाबत में और अधिक बतलाना मेरे लिए असम्भव है। आत्मा की उपमा अपने साथी को खोकर विलाप करते हुये चकवाक से उस नरकुल से दिया जाता है जो दलदली से उखाड़ कर बाँसुरी बनायी गयी हो, जिसका करुण संगीत आँखों में अश्रु ला देता है उस श्येन पक्षी से जिसे शिकारी ने सीटी बजाकर पुन अपनी कलाई पर बैठने के लिये बुलाया हो।

उस कफ से जो धूप में गन्ध कर भाप के रूप में आकाश की ओर उड़ता है उस उन्मत्त ऊँट से जो रात्रि में मरुभूमि से होकर वेग से भागता है, पिंजड़े में बन्द तोते से, सूखी भूमि पर पड़ी मछली से तथा बादशाह बनने के लिये प्रयत्नशील प्यादे से दी जाती है।

इन अलङ्कारों का भाव यह है कि परमात्मा को सर्वश्रेष्ठ माना गया है और आत्मा उसके पास बिना उस मार्ग को ग्रहण किये नहीं पहुँच सकता जिसे प्लोटिनस ने "अकेले की अकेले के लिये उड़ान" कहा है। जलालुद्दीन रूमी कहता है —

"प्रत्येक अणु की गति अपने उद्गम की ओर है
जो व्यक्ति जैसा होने पर तुल जाता है वैसा अवश्य होता है।
तीव्र उत्कण्ठा और प्यार के आकर्षण द्वारा आत्मा और हृदय,
प्रियतम (परमात्मा) के गुणों को ग्रहण कर लेते हैं जो आत्माओं का भी आत्मा है।"

'जो व्यक्ति जैसा होने पर तुल जाता है वैसा अवश्य होता है' तो इसे क्या होता है? एकहार्ट ने अपने एक भजन में सत आगस्टाइन का यह कथन कि 'मनुष्य जिसे प्रेम करता है वही होता है' उद्धृत करते हुए यह टीका लिखा है "यदि वह पत्थर से प्रेम करता है तो वह एक पत्थर है यदि वह मनुष्य से प्रेम करता है तो वह एक मनुष्य है यदि वह परमात्मा से प्रेम करता है तो—मैं आगे कहने का साहस नहीं कर सकता, क्योंकि यदि मैं कहूँ कि 'तो वह परमात्मा है,' तो आपलोग मुझे पत्थरों से मार डालेंगे।"

मुसलमान रहस्यवादियों का अपने ईसाई बन्धुओं की अपेक्षा, जिनकी निष्ठा मध्यकालीन कैथोलिक चर्च के प्रति थी बोलने की अधिक स्वतंत्रता थी और यदि वे सामाजिक बन्धन कर जाते थे तो आह्लाद (मादावस्था) की दलील सामान्यतः पर्याप्त बहाना मान ली जाती थी। चाहे वे एकमात्र होने के दावे या पहलू पर जोर देते हों अथवा परमात्मा की

सर्वश्रेष्ठता या अन्तरस्थता पर, उनकी अभिव्यक्तियाँ निर्भीक और दृढ़ हैं। अबू सईद ने इस प्रकार कहा है—

"मेरे हृदय में तेरा वास है, नहीं तो मैं इसे रक्त से तर कर दूँ
मेरी आँख में तेरी चमक है, नहीं तो मैं इसे आँसुओं से भर दूँ।
मेरी आत्मा की इच्छा केवल तुझमें मिलकर एक हो जाने की है,
अन्यथा, जैसे भी हो, मैं इसे निचोड़ कर शरीर से बाहर धर दूँ।"

जलालुद्दीन यह घोषित करता है कि आत्मा का परमात्मा के प्रति प्रेम परमात्मा का आत्मा के प्रति प्रेम है और आत्मा से प्रेम करने में परमात्मा स्वयं अपने से प्रेम करता है, क्योंकि आत्मा में जो कुछ दैवी वस्तु है उसे वह अपने पास खींच लेता है। कवि कहता है "इस अपूर्व रसायन विद्या द्वारा हमारे ताँबे का प्राकृतिक रूप ही बदल गया है," अर्थात् अहं रूपी मिलावट की खराब धातु शुद्ध और पवित्र कर ली गई है। एक दूसरे गीत में वह कहता है—

"ऐ मेरे आत्मा, मैंने एक सिरे से दूसरे सिरे तक खोजा,
मैंने तुममें सिवाय 'प्रियतम' के कुछ भी नहीं देखा।
ऐ मेरे आत्मा, तू मुझे काफ़िर मत कह,
यदि मैं यह कहूँ कि तू स्वयं ही 'वह' है।"

और अधिक स्पष्टता के साथ वह कहता है —

"तुम जो परमात्मा की खोज में दौड़ रहे हो,
तुम्हें खोज करने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि परमात्मा तुम्हीं हो!
उस वस्तु की तलाश क्यों करते हो जो कभी खोई नहीं थी?
तुम्हारे अतिरिक्त कोई नहीं है, केवल तुम्हीं हो, अरे! कहाँ जा रहे हो!"

जब 'प्रियतम' ने स्वयं को प्रकट कर दिया तो प्रेमी कहाँ पर है? कहीं भी नहीं और सर्वत्र। उसकी व्यक्तिगत सत्ता का उसमें में लोप हो गया है। एकत्व (मिलन) के विवाह-मण्डप में परमात्मा आत्मा का गुप्त विवाह रचाता है।

पञ्चम् अध्याय

संत और चमत्कार

कल्पना कीजिये कि एक सामान्य मुसलमान अँग्रेजी पढ़ सकता है और उसके हाथों में हमने 'सोसाइटी फार साइकिकल रिसर्च' द्वारा प्रकाशित श्रेष्ठ ग्रन्थों की एक प्रति रख दी है। ऐसे अवसर पर उसकी भावनाओं से सामञ्जस्य स्थापित करने के लिये हमें केवल यह सोचना है कि हमारी अपनी भावनायें क्या होंगी, यदि हमारा कोई वैज्ञानिक मित्र हमें एक ऐसे ग्रन्थ का अध्ययन करने के लिये आमन्त्रित करे जिसमें टेलीपाथी के पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं तथा तार द्वारा समाचार भेजने के सुप्रमाणित उदाहरण उल्लिखित हैं। सम्भवत मुसलमान तार में किसी प्रकार की आत्मा—'अफ्रीत' या 'जिन'—का वास समझेगा। मानसिक संक्रमण और इसी प्रकार की गुप्त प्रक्रियाओं को वह स्वयंसिद्ध तथ्य मान लेता है। यह उसके मस्तिष्क में कभी नहीं आयगा कि वह इनका अन्वेषण करे। उसकी मानसिक बनावट ही कुछ ऐसी है कि उसमें यह विचार प्रवेश ही नहीं कर सकता कि अलौकिक भी नियमबद्ध हो सकता है। वह एक अदृश्य जगत की वास्तविकता में, जो केवल हमारे बचपन में ही नहीं वरन् सदैव और सर्वत्र हमारे चारों ओर छाया रहता है, विश्वास करता है क्योंकि वह विश्वास करने को लाचार है। यह ऐसा जगत् है जिससे हम किसी भी प्रकार से बाहर नहीं हैं, जो सबकी पहुँच में और कुछ सीमा तक सब पर प्रकट होता है, यद्यपि उसके साथ स्वच्छन्द समागम करना केवल थोड़े से लोगों का विशेषाधिकार है। अनेक बुलाये जाते हैं किन्तु कुछ ही चुने जाते हैं।

"आत्माओं को प्रत्येक रात्रि शरीर-रूपी जाल से
तू स्वतंत्र करता है और मानस पटल को स्वच्छ बनाता है।
आत्माओं को प्रत्येक रात्रि इस पिंजड़े से मुक्त कर दिया जाता है,
वे स्वतंत्र होती हैं न वे शासक होती हैं और न शासित।
रात्रि में बन्दी बन्दीगृह को भूल जाते हैं,
रात्रि में राजा लोग अपनी अधिकार शक्ति को भूल जाते हैं।
हानि-लाभ का कोई दुःख नहीं रहता, कोई गम्भीर चिन्ता नहीं रह जाती,
निकट या दूर किसी व्यक्ति का कोई विचार नहीं रह जाता।
ज्ञानी जाग्रत अवस्था में भी इसी दशा में रहता है
परमात्मा ने कहा है 'जब वे सोते हों, तू उन्हें जागता हुआ समझ।'[1]
परमात्मा के नियन्त्रणकारी कर में पड़ी लेखनी के समान,
वह संसार के कार्य-व्यापारों के प्रति रात दिन उदासीन बना रहता है।'

सूफ़ियों ने सदैव यह धारणा की है और उनका यह विश्वास रहा है कि वे परमात्मा के इष्ट जन हैं। क़ुरान में अल्लाह के इष्ट जनों की ओर कई स्थान पर संकेत किया गया है। 'किताब अल्-लुमा' के रचयिता के अनुसार यह पदवी प्रथम तो पैग़म्बरों के लिये है जो अपनी निष्पापता, अपने इस्लाम तथा अल्लाह के कार्य को ही अपना जीवन सदा बना लेने के गुण के कारण इसे प्राप्त करते हैं। दूसरे यह पदवी उन कुछ मुसलमानों के लिए है जो अपनी सच्ची भक्ति, इन्द्रिय-दमन तथा अनन्त सत्य के साथ इष्ट सम्बन्ध के गुण के कारण अल्लाह के इष्ट पात्र होते हैं। जिन्हें हम एक शब्द में 'सन्त' कह सकते हैं। जब कि पैग़म्बरगण मुस्लिम समाज के चुने हुये लोग हैं सन्तगण सूफ़ियों के चुने हुये लोग हैं।

१—व तहसिबुहुम ऐक़ाज़म् व हुम रुक़ूद।—क़ुरान १८ १७

मुसलमान सन्त को साधारणतय 'वली' कहा जाता है। इसका बहु वचन 'औलिया' है। यह शब्द अपने मूल अर्थ 'समीपता' से निकले विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है, जैसे 'रफ़ीक़', 'सरपरस्त', हाफ़िज़', 'हबीब'। क़ुरान में इसका प्रयोग अल्लाह के लिये निष्ठावान् व्यक्तियों के रक्षक के रूप में देवदूतों (फ़रिश्तों) और मूर्तियों के लिये, जो अपने उपासकों के रक्षक माने जाते हैं, तथा उन मनुष्यों के लिये, जो मुख्यत दैवी संरक्षण में रहते हैं, हुआ है। मुहम्मद साहब ने यहूदियों को अपने को औलिया लिल्लाह' (परमात्मा पर आश्रित) कहने वाले कहकर ताना दिया है। इस शब्द के कुछ-कुछ सन्दिग्धार्थक होते हुये भी यह सूफियों द्वारा ग्रहण कर लिया गया और उन व्यक्तियों की सामान्य पदवी हो गया, जिन्हें उनकी पवित्रता परमात्मा के समीप पहुँचा देती है तथा जो 'उसकी' विशेष कृपा के चिह्नस्वरूप 'उससे' चमत्कारपूर्ण वरदान (करामात) पाते हैं। वे परमात्मा के मित्र हो जाते हैं। "जिन पर कोई संकट नहीं आयेगा और जिन्हें कोई कष्ट नहीं होगा।"[१] उनको कोई कष्ट पहुँचाना परमात्मा के विरुद्ध शत्रुता का आचरण करना है।

मुस्लिम सन्तों की प्रेरणा यद्यपि शब्दत पैग़म्बरों की प्रेरणा से भिन्न तथा उससे निम्न श्रेणी की मानी जाती है, तथापि यह बिल्कुल उसी प्रकार की होती है। उनके परमात्मा से निकटतम सम्बन्ध के परिणाम स्वरूप अलौकिक को, अथवा मुसलमानों के कथनानुसार अदृश्य जगत् को, आच्छादित करने वाला पर्दा समय-समय उनकी दृष्टि के सामने से हट जाता है और अपने आह्लाद के दौरे में वे पैग़म्बरी स्तर तक पहुँच जाते हैं। मुसलमान सन्त के लिये न तो आध्यात्मिक सत्यों का गहन अध्ययन आवश्यक है और न अच्छे कार्यों में निरत रहना अथवा तपस्या या नैतिक सदाचारिता। उसमें यह सब बातें हो सकती हैं अथवा कोई एक भी नहीं हो सकती किन्तु उसके लिये एकमात्र परमावश्यक

१—अल औलिया अल्लाहि ला ख़ौफ़ुन अलैहिम् वलाहुम यहज़नून। —क़ुरान (१० ६३)

योग्यता आह्लाद और उल्लास है जो जागतिक 'अहं' से पृथक हो जाने का बाह्य लक्षण है। जो भी इस तरह से 'मजजूब' (उल्लसित) हो जाय वही 'वली' है और जब ऐसे व्यक्तियों को उनकी चमत्कार दिखलाने की शक्ति के कारण मान्यता प्राप्त होती है वे सन्त रूप में अपनी मृत्यु के पश्चात् ही नहीं वरन् अपने जीवन काल में भी पूजे जाने लगते हैं। बहुधा वे अप्रकट दशा में ही रहते और मरते हैं। हुजवीरी ने कहा है कि सन्तों में "चार हजार ऐसे हैं जो गुप्त रहते हैं और एक-दूसरे को नहीं जानते और न जिन्हें अपनी श्रेष्ठ अवस्था का ही पता रहता है, क्योंकि सभी परिस्थितियों में वे अपने आपसे तथा मनुष्यों की दृष्टि से छिपे रहते हैं।"

सन्तों की एक अदृश्य शासनसभा होती है। उसी पर संसार की व्यवस्था का भार होना ख्याल किया जाता है। इसके सर्वोच्च अधिकारी को 'कुत्ब' (धुरी) की पदवी दी जाती है। यह अपने समय का सब श्रेष्ठ सन्त होता है और इस महती सभा द्वारा बराबर की जाने वाली बैठकों का सभापतित्व करता है। इसके सदस्यों को उपस्थित होने में समय और स्थल की दूरी की असुविधाजनक कल्पनायें कोई बाधा नहीं पहुँचातीं, वरन् वे निमिषमात्र में पृथ्वी के समस्त भागों से समुद्रों पर्वतों तथा रेगिस्तानों को उसी सुगमता से पार करते हुये, जिस प्रकार साधारण मर्त्य (मनुष्य) सड़क को पार करते हैं, एकत्रित हो जाते हैं। 'कुत्ब' के नीचे पवित्रतानुसार विभिन्न वर्ग और श्रेणियाँ होती हैं। हुजवीरी ने उन्हें ऊपर चढ़ते हुये क्रम से निम्नलिखित ढंग से गिनाया है—तीन सौ 'अखयार' (नेक लोग), चालिस 'अब्दाल', (एवजी प्रतिनिधि), सात 'अबरार' (पवित्र आचरण वाले), चार 'औताद', (स्तम्भ) और तीन नुक़बा (पर्यवेक्षक)।

"ये सब एक-दूसरे को जानते हैं और बिना आपस में राय किये कोई काम नहीं कर सकते। 'औताद' का यह कर्त्तव्य होता है कि वह प्रत्येक रात सम्पूर्ण जगत का चक्कर लगा आता है। अगर किसी स्थान

पर उसकी दृष्टि नहीं पड़ी तो दूसरे दिन उस स्थान पर कोई-न कोई गड़बड़ी अवश्य दिखाई पड़ेगी। तब उन्हें इसकी सूचना 'कुत्ब' को देनी पड़ती है ताकि वह उधर अपना ध्यान देकर उस त्रुटिपूर्ण जगह की अपूर्णता (गड़बड़ी) को अपनी दुआ के द्वारा ठीक कर दें।"

इस पुस्तक में हम मुसलमान के व्यक्तिगत रहस्यवादी जीवन का अध्ययन कर रहे हैं और यह आवश्यक है कि इस विषय को संकुचित सीमाओं के भीतर रक्खा जाय। अन्यथा मैं यह अधिक पसन्द करता कि सूफ़ीमत के बाह्य और ऐतिहासिक संगठन की विवेचना सन्तों के एक सम्प्रदाय के रूप में की जाय तथा विकास की उस प्रक्रिया का वर्णन किया जाय जिसके द्वारा एक छोटी-सी मित्र-मंडली से निजी तौर पर वार्तालाप करने वाला 'वली' पहले अपने जीवन काल में अपने चारों ओर शिष्यों को बटोर कर शिक्षक और आध्यात्मिक गुरू बना और अन्त में एक स्थायी धार्मिक सम्प्रदाय का प्रधान बन गया, जिस पर उसके नाम की मुहर अंकित है। इन महान् समागमों का प्राचीनतम रूप बारहवीं शताब्दी से मिलने लगता है। प्रत्येक सम्प्रदाय में अपने निजी सदस्यों—यथाकथित दरवेशों—के अतिरिक्त उससे सम्बद्ध दीक्षित गृहस्थ बहुत बड़ी संख्या में होते हैं, यहाँ तक कि उनका प्रभाव मुस्लिम समाज के सभी वर्गों पर पड़ता है। 'ये सम्प्रदाय स्वतन्त्र और स्व-विकसित होते हैं। उनमें आपस में प्रतिद्वन्द्विता होती है किन्तु कोई किसी दूसरे पर शासन नहीं करता। प्रत्येक सम्प्रदाय विश्वास और अभ्यास में अपनी ही पद्धति का अनुसरण करता है, जो केवल इस्लाम के निराग्यानी अन्तर्विरोध द्वारा सीमित होते हैं। इस प्रकार विलक्षण सिद्धान्त और भयंकर नैतिक त्रुटियाँ पैदा हो जाती हैं, किन्तु स्वतंत्रता बच जाती है। यह निश्चय है कि आश्चर्यभूत 'वली' किसी धर्म की स्थापना नहीं कर सकता, किन्तु इस्लाम ने ईसाई धर्म की अपेक्षा अधिक बार ऐसे व्यक्तियों को जन्म दिया है जिन्होंने तीव्र आध्यात्मिक ज्योति को निर्मल शक्ति तथा सांसारिक कार्यों में अभिरुचि से बहुत बड़े पैमाने पर

जोड़ दिया है। मुसलमानों ने इस विचार ने, कि सन्त परमात्मा द्वारा अधिकृत व्यक्ति होता है, 'सन्त' शब्द के प्रयोग को बहुत व्यापक बना दिया है। इसका प्रयोग इतना व्यापक है कि जलालुद्दीन रूमी तथा इब्नुल अरबी जैसे महान् सूफी प्रवक्ताओं से लेकर केवल मानसिक सन्तुलन खोकर पवित्रता प्राप्त करने वाले मृगी और हिस्टीरिया के रोगी, अर्द्ध विक्षिप्त, कम समझ तथा अनाप शनाप बकने वाले पगले तक सभी इसी कोटि में आ गये हैं।

कुशैरी और हुजवीरी दोनों ने इस प्रश्न को कि क्या सन्त को अपने सन्तत्व का पता हो सकता है, विवेचना की है और ज्ञानी मत पर उत्तर दिया है। उनके विपक्षियों का तर्क है कि सन्तत्व की चेतना में मोक्ष (नजात) प्राप्त करने का विश्वास नीहित है, जो असम्भव है, क्योंकि कोई भी निश्चयपूर्वक यह नहीं जान सकता कि वह क़यामत के दिन सुरक्षित लोगों के मध्य में होगा। इसके उत्तर में यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि परमात्मा सन्त को चमत्कार पूर्ण ढंग से स्पष्ट रूप से निश्चित मोक्ष का विश्वास दिला सकता है और साथ ही साथ 'वह' उस आध्यात्मिक पूर्णता की दशा में बनाये रखता है तथा उसे अपराध से बचाता है। पैग़म्बर की भाँति सन्त निष्पाप नहीं होता किन्तु उसे प्राप्त दैवी संरक्षण इस बात का पक्का सबूत है कि वह बुरे कार्यों में नहीं लिप्त हो सकता, यद्यपि अपराधी रूप से वह अपने मार्ग से च्युत हो सकता है। सामान्य दृष्टिकोण के अनुसार सन्तत्व विश्वास पर निर्भर है, न कि आचरण पर; यहाँ तक कि सिवाय 'कुफ्र' (नास्तिकता) के अन्य किसी पाप के कारण वह पद छीना नहीं जा सकता। इस खतरनाक सिद्धान्त को, जो अधिकार विशेषता के लिए द्वार खुला छोड़ देता है, 'शरअ' (धार्मिक नियम) की पाबन्दी पर जोर देकर शान्त किया गया। बायजीद अल्-बिस्तामी की निम्नलिखित कहानी से सभी बड़े सूफियों के, जो मुसलमानों को धर्म ग्रन्थों में अधि

कारी विद्वानों के रूप में उद्धृत किये गये हैं, परम्परागत दृष्टिकोण का पता चलता है।

उसने कहा है, 'मुझे बतलाया गया कि परमात्मा का एक सन्त अमुक नगर में रहता है और मैं उससे मिलने के लिये चल पड़ा। जब मैंने मस्जिद में प्रवेश किया, वह अपने कमरे से बाहर निकला और उसने फर्श पर थूक दिया। मैं बिना उसको सलाम किये ही फौरन लौट पड़ा, मन में यह कहता हुआ कि सन्त को धार्मिक नियम की पाबन्दी अवश्य करनी चाहिये ताकि परमात्मा उसकी आध्यात्मिक शक्ति को बनाये रक्खे। यदि यह व्यक्ति सन्त होता तो 'शरीअत' के प्रति उसका आदर उसे फर्श पर थूकने से अवश्य रोकता अथवा परमात्मा ही उसको उसे प्रदान की गई कृपा को दूषित करने से बचाता।"

जो भी हो बहुत से 'वली' 'शरीअत' को एक अवरोध मानते हैं। यह उस समय तक तो नितान्त आवश्यक है जब तक कोई अनुशासन 'मक़ामात' में रहता है किन्तु इसका सन्त द्वारा परित्याग किया जा सकता है। उनकी घोषणा है कि ऐसा व्यक्ति साधारण मनुष्यों की अपेक्षा अधिक ऊँचे स्तर पर होता है और उसे उन कार्यों के कारण अपराधी न ठहराना चाहिये जो बाह्य रूप से अधार्मिक प्रतीत होते हैं। जब कि पुराने सूफ़ी इस बात पर ज़ोर देते हैं कि नियम भंग करने वाला 'वली' पाखण्डी होता है, जन साधारण की सन्तों में श्रद्धा और सन्त-उपासना की तीव्र प्रगति ने 'वली' का पद नियम के ऊपर तक बढ़ा दिया और इस विश्वास को पुष्ट किया कि दैवी वरदान प्राप्त मनुष्य कोई गलती नहीं कर सकता अथवा कम से कम उसके कार्यों पर उनके बाह्य रूप द्वारा ही निर्णय नहीं दिया जा सकता। परमात्मा के मित्रों में निहित इस दैवी अधिकार का प्रसिद्ध उदाहरण मूसा और ख़िज़्र—क़ुरान में सूरा १८ आयत ६४ से ८० तक में वर्णित है। ख़िज़्र—क़ुरान में उनका वर्णन नाम लेकर नहीं किया गया है—"एक रहस्यमय सन्त हैं जिन्हें अमरत्व का वरदान प्राप्त है। कहा जाता है कि वे घूमने फिरने वाले

सत्रियों से मिलकर बातचीत करते हैं तथा उन्हें अपना ईश्वर प्रदत्त ज्ञान सुनाते हैं। मूसा ने एक यात्रा में उनके साथ चलने की इच्छा प्रकट की ताकि वह उनकी शिक्षाओं से लाभ उठा सकें। खिज्र ने केवल इस शर्त पर स्वीकृति दी कि मूसा उनसे कोई प्रश्न नहीं पूछेगा।

फ़न तलक़ा हत्ता इज़ा रकिबा फ़िस्सफ़ीनति ख़रक़हा क़ाल
अख़रक़्तहा लितुग़रिक़ अहलहा लक़दजित शईअन इम्रा
क़ाल अलम् अक़ुल्लक इन्नक लन् तस्ततीअ मइय सबरा।
फ़नतलक़ा हत्ता इज़ा लक़िया ग़ुलामन फ़क़तलहू क़ाल अक़तल्त
नफ़सन ज़कीय्यतम बिग़ैरे नफ़्स लक़द जित्तीअन नुक्रा।

"इस प्रकार वे चलते गये। फिर वे एक नाव में बैठे और उन्होंने (खिज्र ने) नाव में छेद कर दिया। मूसा चिल्ला उठा, 'यह तूने क्या किया! क्या तूने इसमें इसलिये छेद कर दिया है कि इसके मल्लाहों को डुबा दे! सचमुच ही तूने बड़ा विचित्र कार्य किया है!'

'उसने उत्तर दिया, 'क्या मैंने तुमसे नहीं कह दिया था कि तू मेरे साथ किसी भी प्रकार से धैर्य न धारण कर सकेगा' !"

"फिर वे बढ़ते गये और उनकी भेंट एक नौजवान से हुई। उसने (खिज्र ने) उसे मार डाला। मूसा बोल उठा, 'तूने उसे, जो हत्या के अपराध से बरी है, क्यों मार डाला! निश्चय ही तूने अबकी बार ऐसा कार्य किया है जैसा कभी नहीं सुना गया' !"

जब मूसा ने अपनी मौन रहने की प्रतिज्ञा तीसरी बार भी तोड़ दी तो खिज्र ने उसे छोड़ देने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

सउनब्बिउक बितावीलि मालम तस्ततिअ अलैहि सबरा।
अम्मास सफ़ीनतु फ़कानत लिमसाकीन यामलून फ़िल्बहरि
फ़अरत्तु अन अईबहा वकान वराअहुम मलिकुई याख़ुज़ु
कुल्ल सफ़ीनतिन ग़स्बा। व अम्मल ग़ुलामु फ़कान अबवाहु
मुमिनैने फ़ख़शीना अैई युरहिक़हुमा तुग़यानौं व कुफ़रा।

उसने कहा, "किन्तु पहले मैं तुझे उन कार्यों का अर्थ बतला दूँगा जिन्हें देखकर तू धैर्य नहीं रख सका। जहाँ तक नौका का सम्बन्ध है वह समुद्र में परिश्रम करने वाले ग़रीब आदमियों की थी और मुझे उसमें छेद करने का विचार इस वास्ते आया कि उनके पीछे एक राजा आ रहा था जो प्रत्येक अच्छी नाव को जबरदस्ती अपने लिये पकड़ लेता था। मैंने युवक को इसलिये मारा कि उसके माता पिता धार्मिक थे और मुझे यह भय हुआ कि कहीं यह अपनी अधार्मिकता और ग़लती से उन्हें कष्ट न पहुँचावे।"

सूफ़ियों को इस अकाट्य साक्ष्य का उद्धरण देना अधिक प्रिय है कि 'वली मानवीय आलोचना से ऊपर होता है और, जलालुद्दीन के कथनानुसार, उसका हाथ परमात्मा का हाथ होता है। अधिकांश मुसलमान इस कथन की अखण्डता को स्वीकार करते हैं क्योंकि वे नैतिकता के रूढ़ मापदण्डों को उन पर लागू करने से झिझकते हैं।

किसी सन्त द्वारा दिखलाये गये चमत्कार को 'करामत' कहते हैं अर्थात् यह उसको परमात्मा द्वारा प्रदत्त 'कृपा' है, जब कि पैग़म्बर द्वारा दिखलाये गये चमत्कार को 'मुअजिज़ा' नाम दिया जाता है, अर्थात् ऐसा कार्य जिसकी कोई भी नक़ल नहीं कर सकता। इस भिन्नता का जन्म मतभेद के कारण हुआ और इसका प्रयोग उन लोगों को उत्तर देने के लिये किया गया जो सन्तों की चमत्कारिक शक्तियों को पैग़म्बर के असाधारण विशेषाधिकार का भारी अतिक्रमण मानते थे। सूफ़ी सम्प्रदायवादियों ने, इस बात को स्वीकार करते हुए भी कि दोनों प्रकार के चमत्कार वस्तुतः एक हैं श्रमपूर्वक दोनों की विशेषताओं में भेद कर लाया है। वे यह भी कहते हैं कि सन्त पैग़म्बर के साक्षी होते हैं और उनके समस्त चमत्कार, मधु से भरे चर्मपात्र से टपकी बूंद की भाँति, वास्तव में पैग़म्बर से ही उन्हें प्राप्त होते हैं। यह दृष्टिकोण सनातन पंथियों का है और इसका समर्थन वे मुसलमान धर्मी करते हैं जो 'क़ानून' और 'हक़ीक़त' (नियम और सत्य) दोनों को स्वीकार करते हैं, यद्यपि

इन दशाओं में यह एक पवित्र राज से बढ़ कर नहीं है। हमने बहुधा देखा है कि किस प्रकार सूफीगण इस्लाम के साथ तर्कपूर्ण सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न करते समय अपने को कठिनाई में अनुभव करते हैं। प्राच्य धर्म के यूरोपीय विद्यार्थियों के लिए बुद्धिमत्ता का प्रारम्भ यह मान करने में है कि बनसत विश्वास—मेरा तात्पर्य ऐसे विश्वासों से है जिनसे हमारा मन सामञ्जस्य नहीं स्थापित कर सकता—प्राची-वासियों के मस्तिष्क में एक दूसरे के साथ शान्तिपूर्वक बने रहते हैं और उनके बेमेलपन की चेतना उनके मालिक को बिल्कुल ही नहीं होती। फिर भी नियमानुसार यह पूर्ण रूप से सच्चा होता है। वे विपरीत वचन जो हमें बहुत स्पष्ट प्रतीत होते हैं, उसे तनिक भी परेशान नहीं करते।

प्राचीन सूफीमत में चमत्कारिक तत्त्व इतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना यह बाद में दरवेश सम्प्रदायों से सम्बद्ध पूर्ण विकसित सन्त उपासना में हो गया। कुशैरी का कथन है कि "वह सन्त-सन्त ही नहीं है जो इस संसार में चमत्कार न दिखला सके। प्रारम्भिक मुसलमान पवित्रात्माओं के जीवन में यह कथन सामान्य रूप से मिलता है कि चमत्कारिक शक्तियाँ अपेक्षाकृत कम महत्त्व की हैं। एक स्त्री अरसा ने बहुत सुन्दर कहा है कि प्रत्येक बड़ा चमत्कार दुर्गुणों के पहले सद्गुणों को प्राप्त करना है। 'किताब अल्-लुमा' में ऐसे सन्तों के बहुत से उदाहरण दिये गये हैं जिन्होंने चमत्कारों से घृणा किया तथा उन्हें प्रलोभन माना। बायज़ीद का कहना था कि "मेरी साधना की भी प्रारम्भिक अवस्था में परमात्मा मेरे समक्ष बहुत से अद्भुत कार्य और चमत्कार लाया करता था किन्तु मैंने उनकी ओर बाद ध्यान नहीं दिया। जब उसने देखा कि मैं ऐसा करता हूँ तो उसने मुझे वह मार्ग दिया जिससे मैं उसके सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कर सकूँ।" जुनैद का कहना था कि चमत्कारों पर निर्भर रहना उन पर्दों में से एक पर्दा है जो भक्त को ज्ञान रूपी मन्दिर के अन्तरतम भाग तक प्रवेश करने से रोकते हैं। मुसलमानों के विचारवान समुदाय के लिए यह सिद्धान्त बहुत भारी पड़ता था,

तथा शताब्दी को बड़ी दुर्निवार अनन्त प्रवृत्ति बढ़ा ले गई जिसने मुहम्मद साहब के शपथ पूर्वक कहे गये वचनों को, कि उनमे कोई भी बात अलौकिक नहीं थी व्यर्थ बना दिया तथा जिसने ऐतिहासिक मानव पैग़म्बर को एक सर्वशक्तिशाली गुप्त रहस्यों के व्याख्याता तथा जादूगर में रूपान्तरित कर दिया। चमत्कारों क लिए जन साधारण की माँग पूर्ति से कहीं अधिक बढ़ गई किन्तु जहाँ पर वलीगण असफल हुए वहीं एक स्पष्ट और सहज ही विश्वास करने योग्य कल्पना ने उनकी रक्षा की और उन्हें उस रूप में नहीं, जैसे कि वे थे, वरन् उस रूप में, जैसा कि उन्हें होना चाहिये प्रदर्शित किया। प्रति वर्ष 'सन्तों की गाथा' अधिक-अधिक ऐश्वर्य पूर्ण तथा आश्चर्य जनक होती गई क्योंकि इसे प्राच्य कल्पना के अथाह महासागर से सदैव ताज़ी सहायता मिलती रही। 'वलियों' द्वारा अथवा उनकी ओर से किये गय दावे लगातार बढ़ते गये और उनके बारे में कही गई कहानियाँ निरन्तर अधिक-अधिक बहूदी तथा मुक्तमुख होती गई। इस अध्याय के शेष भाग में मैं इस विषय पर उपलब्ध विशाल मध्यकालीन साहित्य में वर्णित वली के रूप का एक रेखाचित्र खींचने का प्रयास करूँगा।

मुसलमान सन्त यह नहीं कहता कि उसने कोई चमत्कार दिखलाया है वह कहता है, "चमत्कार मुझे प्रदान या मुझ पर प्रकट किया गया।" इस दृष्टिकोण क अनुसार वह चमत्कार के समय पूर्णरूप से चैतन्य हो सकता है, किन्तु बहुत स सूफ़ियों का विचार है कि ऐसा प्रकटीकरण सिवाय आह्लाद (मायाविष्टावस्था) क, जब कि सन्त पूर्ण रूप से दैवी नियन्त्रण में होता है, अन्य किसी अवस्था में नहीं हो सकता है। उस समय उसका निजी व्यक्तित्व क्षणिक विराम में होता है और जो लोग उसमें हस्तक्षेप करते हैं व उस सर्वशक्तिमान् सत्ता का विरोध करते हैं जो उनके आत्मा से बोलती तथा उनके हाथों से मारती है। जलालुद्दीन ने, जो कभी-कभी किसी पदी द्वारा वशीभूत किसी मनुष्य की दो अर्थों वाली उपमा का प्रयोग करता है, प्रसिद्ध फ़ारसी सन्त बायज़ीद बिस्तामी क बारे

जिसके परिणाम स्वरूप सन्तत्व के बारे में श्रशिष्ट भावों की रहस्यवादी और धर्म शास्त्र सम्मत विचारों पर विजय हुई। ऐसी समस्त चेतावनियों में जिसने श्राह्लाद पूर्ण उन्माद में कई बार यह घोषित किया कि वह खुदा के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है, निम्नलिखित घटना बयान किया है।

एक ऐसे अवसर पर अपनी चेतना पुन प्राप्त करने पर और यह जान कर कि उसने कैसी ईश्वर निन्दक भाषा का उच्चारण किया है, बायज़ीद ने अपने शिष्यों को आदेश दिया कि यदि वह फिर ऐसी ग़लती करे तो व उस छुरा भोंक दें। इसका परिणाम क्या हुआ—यह मैं श्री निकोलिस द्वारा किये गये 'मसनवी' के संक्षिप्त अनुवाद से उद्धृत करूँगा (पृष्ठ १६६)।

"उन्माद की वेगवती धारा उसका विवेक बहा ले गई
और वह बोला पहले की अपेक्षा अधिक अपवित्रता से
मेरे परिधान में सिवाय परमात्मा के कुछ भी नहीं है,
तुम चाहे 'उस' स्वर्ग में खोजो या पृथ्वी पर।'
समस्त शिष्य उत्तेजक, भय से पागल हो उठे
और उसके पवित्र शरीर पर छुरों से वार करने लगे।
जिसने भी शन्त की देह पर वार साधा
उसका वार पलट कर मारने वाले को ही घायल कर गया।
उस दिव्य शक्ति वाले पुरुष पर किसी चोट का प्रभाव न पड़ा,
किन्तु शिष्यगण घायल होकर रक्त से लथपथ हो गये।"
कवि ने अपना निष्कर्ष इस प्रकार दिया है:—
"अरे! तुम जो उस, जो अपने में नहीं है, अपनी तलवार से मारते हो
तुम स्वयं उस तलवार से अपने को मारते हो सावधान!
क्योंकि जो अपने में नहीं है वह नष्ट होकर सुरक्षित है
और वह सदैव सुरक्षा में ही रहता है।
उसका अपना रूप मिट चुका है, वह तो दर्पण मात्र है

उसमें सिवाय दूसरे के प्रतिबिम्ब के कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता।
यदि तुम उस पर थूकते हो तो तुम अपने ही मुँह पर थूकते हो,
यदि तुम दर्पण को मारते हो तो तुम स्वयं को ही मारते हो।
यदि तुम यहाँ 'इसा' को देखते हो, तो तुम उसकी माता 'मेरी' हो।
यदि तुम्हें उसमें कोई भद्दा चेहरा दिखाई पड़े तो यह तुम्हारा ही है।
वह न यह है न वह है—यह आकार से परे है
तुम्हारा अपना ही रूप तुम्हारे समक्ष प्रतिबिम्बित होता है।"

एक दूसरे फ़ारसी सूफ़ी अबुलहसन खुरकानी की जीवनी, जिसकी मृत्यु सन् १०३३ ई० में हुई, हमारे समक्ष एक प्राच्य विश्वासवादी का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करती है और चरित्र में मिश्रित उत्कृष्टता तथा अभिमान को यथेष्ट स्पष्टता के साथ प्रदर्शित करती है। चूंकि मूल पाठ पचास पृष्ठों में है, मैं उसके एक अल्पांश का ही यहाँ पर अनुवाद कर सकता हूँ।

"एक बार शेख ने कहा 'आज रात में बहुत से आदमी (उन्होंने ठीक-ठीक संख्या बतलाई) अमुक मरुभूमि में डाकुओं द्वारा घायल कर दिये गए हैं।' जाँच करने पर ज्ञात हुआ कि उनका कथन पूर्ण रूप से सत्य था। आश्चर्य की बात यह है कि उसी रात में उनके लड़के का सिर काट कर उनके घर के चौखट पर लटका दिया गया किन्तु उन्हें कुछ भी पता न चला। उनकी स्त्री ने, जो उनमें अविश्वास करती थी, रो कर उनसे पूछा, 'उस आदमी के बारे में क्या समझा जाय जो मीलों दूर घटित बातों को तो बतला सकता है किन्तु यह नहीं जानता कि स्वयं उसके लड़के का सिर काटकर उसी के दरवाजे पर लटका दिया गया है!' शेख ने उत्तर दिया, 'हाँ जब मैंने पहली घटना देखी उस समय 'हिजाब (पर्दा) दूर हो गया था किन्तु जब मेरा लड़का मारा गया तब पर्दा फिर गिर चुका था'।"

"एक दिन अबुलहसन खुरकानी ने मुट्ठी बाँध कर और अपनी कनिष्ठा अँगुली आगे करके कहा, 'यदि कोई सूफ़ी होना चाहता है तो 'क़िबला' यहाँ है (क़िबला उस स्थान को कहते हैं जिसकी ओर मुँह

करके मुसल्मान लोग नमाज़ पढ़ते हैं अर्थात् 'काबा')। इन शब्दों की सूचना महान् शेख़ को दी गई जिन्होंने दो 'क़िबलाओं' का सह अस्तित्व दैवी एकत्व का अपमान समझ कर यह घोषित किया, 'अब चूँकि एक दूसरा 'क़िबला' प्रकट हो गया है मैं पहले 'क़िबला' को मसूख़ करता हूँ।' उसके पश्चात् कोई भी यात्री मक्का' नहीं पहुँच पाते थे। कुछ रास्ते में ही मर जाते थे और कुछ लुटेरों के हाथ में पड़ जाते थे अथवा विभिन्न कारणों से यात्रा पूर्ण करने से वञ्चित रह जाते थे। दूसरे वर्ष किसी दरवेश ने महान् शेख़ से कहा लोगों को अल्लाह के घर (काबा) से दूर रखने में क्या तुक है?" तब महान् शेख़ ने एक इशारा किया और सड़क एक बार पुनः खुल गई। दरवेश ने पूछा, 'किसके अपराध से इन सब मनुष्यों की जानें गईं?" महान् शेख़ ने उत्तर दिया 'जब हाथी एक दूसरे से धक्कम धक्का करते हैं तो यदि कुछ क्षुद्र पक्षी कुचल कर मर जायँ तो कौन उसकी परवाह करता है'?"

"कुछ आदमी एक यात्रा पर जाने वाले थे। उन्होंने ख़ुरक़ानी से प्रार्थना किया कि वे उन्हें ऐसी प्रार्थना बतला दें जिससे वे मार्ग में आनेवाली विपत्तियों से अपनी रक्षा कर सकें। ख़ुरक़ानी ने कहा, 'तुम लोगों पर अगर कोई विपत्ति आ पड़े तो मेरा नाम ले लेना।' इस उत्तर से उन लोगों को सन्तोष नहीं हुआ फिर भी वे अपनी यात्रा पर चले। रास्ते में लुटेरों ने उन पर आक्रमण किया। उस दल में से एक ने सन्त (ख़ुरक़ानी) का नाम लिया और तुरन्त ही अदृश्य हो गया। लुटेरों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि उन्हें न तो उसका ऊँट ही दिखाई पड़ा और न उसके सामान की गठरी ही। दूसरे लोगों के सब सामान और वस्त्र लुट गये। घर लौटने पर उन्होंने शेख़ (ख़ुरक़ानी) से इसका रहस्य बतलाने को कहा। उन लोगों ने कहा 'हम सब लोगों ने अल्लाह का नाम लिया था किन्तु वह व्यर्थ सिद्ध हुआ किन्तु एक व्यक्ति ने तुम्हारा नाम लिया और वह लुटेरों की आँखों के सामने से अदृश्य हो गया।' शेख़ ने कहा, 'तुम लोग अल्लाह को नाम के लिए पुकारते हो जब कि

मैं 'उसे' वास्तव में पुकारता हूँ। इसलिये जब तुम मुझे पुकारते हो तो मैं तुम्हारी तरफ से परमात्मा को पुकारता हूँ और तुम्हारी प्रार्थनायें स्वीकार हो जाती हैं किन्तु तुम्हारा अल्लाह को नाम भर के लिये रट लगाना बिल्कुल व्यर्थ है'।"

"एक रात जब वह प्रार्थना कर रहा था उसने एक आवाज उसे पुकारते हुये सुनी, 'ऐ अबुल् हसन ! क्या तू चाहता है कि 'मैं' लोगों को यह बतला दूँ कि 'मैं' तेरे बारे में क्या जानता हूँ ताकि लोग तुझे पत्थर मार मार कर मार डालें !' उसने उत्तर दिया, 'हे प्रभु, अल्लाह ! क्या 'तू' चाहता है कि मैं लोगों को यह बतला दूँ कि मैं 'तेरी' कृपा के बारे में क्या जानता हूँ और तेरा कौन-सा जलवा (ऐश्वर्य) देखता हूँ जिससे उनमें से कोई भी कभी प्रार्थना में तुम्हारे सामने न झुके।' उस आवाज ने उत्तर दिया, तू अपना भेद छिपाये रख और मैं अपना भेद छिपाये रक्खूँगा'।"

"उसने कहा हे अल्लाह, मौत के फरिश्ते को तू मेरे पास मत भेज क्योंकि मैं अपनी आत्मा उसे समर्पित न करूँगा। मैंने अपनी आत्मा तुमसे पाई है और तेरे सिवाय अन्य किसी को मैं इसे नहीं दे सकता'।"

"उसने कहा, 'मेरे फना हो जाने के पश्चात् मौत का फरिश्ता मेरे वंशजों में से किसी एक के पास आकर उसकी रूह (आत्मा) निकालेगा तथा उसके साथ कठोरता से पेश आवेगा। तब मैं मकबरे से अपने हाथ उठाकर उसके मुख पर अल्लाह का जलवा डालूँगा'।"

"उसने कहा, 'यदि मैं 'इल्लियुल्-अल्लाक' (स्वर्गों का भी स्वर्ग ब्रह्मलोक) को चलने की आशा हूँ तो यह उसका पालन करेगा और यदि मैं सूर से रुक जाने को कहूँ तो वह अपने मार्ग पर चलने से रुक जायगा'।'

"उसने कहा, 'न मैं भक्त हूँ और न तपस्वी, न मैं धर्मशास्त्री हूँ और न सूफी। ए परमात्मा ! तू 'एक' है और तेरे 'एकत्व' द्वारा मैं भी 'एक हूँ'।"

"उसने कहा, 'मेरा सिर ही 'अकूलत् अअलात' (ब्रह्मलोक) है और मेरे चरण ही पाताल हैं और मेरे दोनों हाथ पूर्व और पश्चिम दिशायें हैं'।"

"उसने कहा, 'यदि कोई व्यक्ति यह विश्वास नहीं करता कि मैं 'हश्र' (जिस दिन मुर्दे अपनी कब्रों से उठ खड़े होते हैं) में खड़ा होऊँगा और जब तक मैं उसके आगे न चलूँगा वह बहिश्त (स्वर्ग) में प्रवेश न कर सकेगा, तो उसे यहाँ मुझसे सलाम करने नहीं आना चाहिये'।"

"उसने कहा 'चूंकि परमात्मा ने मुझे स्वयं मुझसे ही स्वयं भिन्न है, बहिश्त मुझे ढूँढता फिरता है और दोज़ख (नरक) मुझसे भय खाता है। यदि बहिश्त और दोज़ख इस स्थान में होकर निकलें जहाँ पर मैं हूँ, तो दोनों ही उनमें रहने वाले सभी व्यक्तियों के साथ मुझमें लय हो जायेंगे'।"

"उसने कहा, 'मैं चित लेटा हुआ सो रहा था। परमात्मा के सिंहासन के एक कोने से कोई चीज़ मेरे मुँह में टपक पड़ी और मैंने अपनी आत्मा में एक मधुरता का अनुभव किया'।"

"उसने कहा, 'सत की चमड़ी के भीतर जो कुछ है उसमें से यदि पानी की बूँदें भी उसके मुख से बाहर निकल आवें, तो स्वर्ग और मृत्यु लोक के समस्त प्राणी एकदम मग्न हो उठेंगे।"

"उसने कहा, 'साधना द्वारा सन्तगण मछलियों को समुद्र में तैरने से रोक सकते हैं और पृथ्वी को इस प्रकार कँपा सकते हैं कि लोग यह समझ लें कि भूचाल आ गया है,।"

"उसने कहा, 'यदि 'उसके' (मित्रों के) हृदय में गुप्त, परमात्मा का प्रेम प्रकट हो जाय तो सारा संसार जल जाए और अग्नि से मर जायगा'।"

"उसने कहा, 'जो परमात्मा के संग रहता है उसने सभी दृश्य वस्तुएँ देख ली हैं, सभी श्रव्य बातें सुन ली हैं, सभी कार्य कर लिये हैं तथा सभी ज्ञातव्य बातें जान ली हैं'।"

"उसने कहा, 'सभी वस्तुएँ मेरे भीतर हैं किन्तु स्वय मेरे लिये मेरे भीतर कोई स्थान नहीं है' ।"

"उसने कहा, 'चमत्कार 'परमात्मा के पथ' के सहस्र मक़ामात (विश्रामस्थलों) में से पहला मक़ाम है' ।"

'उसने कहा, 'जब तक तू खोजा न जा, तू खोज मत कर क्योंकि जब तू जिसे खोजता है पा जायगा, तो वह तेरे ही अनुरूप होगा' ।"

"उसने कहा, 'नित्य प्रति तुझे सहस्रों बार मरना और जीना चाहिये, जिससे तू अनन्त जीवन प्राप्त कर सके' ।"

'उसने कहा, 'जब तू परमात्मा को अपनी शून्यता और अपना अनस्तित्व देगा तो परमात्मा तुझे अपना सब कुछ दे देगा' ।"

मुसलमान सन्तों की जीवनियों में वर्णित चमत्कारों के विभिन्न प्रकारों को गिनाना और उदाहरण देकर समझाना लगभग एक असमाप्तप्राय कार्य होगा—उदाहरणार्थ पानी पर चलना हवा में अकले या किसी यात्री सहित उड़ना, वर्षा करना, एक ही समय में विभिन्न स्थानों पर प्रकट होना, फूँक मारकर चङ्गा करना, मुर्दे को जीवित करना, भविष्य में होने वाली घटनाओं को जान लेना और उनकी भविष्यवाणी करना, दूसरे के मन के भाव जान लेना, एक शब्द या संकेत द्वारा किसी दुष्ट व्यक्ति को लकवा मार देना (अशक्त कर देना) या उसका सिर काट लेना, पशुओं या पौधों से बातचीत करना, मिट्टी को सोना या मूल्यवान पत्थर में परिवर्तित कर देना, भोजन और पानी उत्पन्न कर देना, इत्यादि । मुसलमान के लिये, जिसे प्रकृति के नियम का कुछ भी ज्ञान नहीं है, उसके कथनानुसार, यीशि मद्र के यह सब कार्य समान रूप से महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं । दूसरी ओर हम लोग अपने को इसके लिये बाध्य समझते हैं कि जिस बात को हम विवेक रहित तथा असम्भव समझते हैं उसका उस बात से विभेद करें जिसके लिये हम किसी प्रकार का प्राकृतिक कारण ढूँढ सकते हैं । मन पर प्रभाव डालना, विश्वास और संकेत द्वारा चिकित्सा करना मानसिक संभ्रमण, सत्याभासित भ्रम, कृत्रिम निद्रा

लाने वाले सकेत और इसी प्रकार के अन्य आधुनिक सिद्धान्तों ने पूर्वीय मस्तिष्क में स्थित इस अन्धकारमय महाद्वीप तक पहुँचने के लिये एक प्रशस्त मार्ग हमारे समक्ष खोल दिया है। यद्यपि यह विषय बहुत रोचक है फिर भी मैं इसमें इस समय अधिक दूर तक नहीं जाऊँगा। सूफ़िया की उच्च शिक्षा में सन्तों की चमत्कारिक शक्तियां का भाग न्यूनाधिक अमहत्वपूर्ण है और दरवेश सम्प्रदायों के मङ्गठित रहस्यवाद में इन शक्तियों का अत्यधिक महत्वपूर्ण होना इसके मयाश च्युत होने का एक स्पष्ट लक्षण है।

निम्नलिखित अनुच्छेद, जिसे मैंने कुछ-कुछ सुधार दिया है कृत्रिम निद्रा लाने की उस प्रक्रिया का एक सुन्दर सारांश प्रस्तुत करता है जिसके द्वारा दरवेश परमात्मा से मिलन प्राप्त करता है —

"शिष्य को सदन रहस्यमय रूप से अपने मुर्शिद (आध्यात्मिक गुरु) को याद रखना चाहिये और निरन्तर उसका ध्यान और चिन्तन करके मन को उसी में रमा देना चाहिये। सभी बुरे विचारों से गुरु उसकी रक्षा करता है। गुरु की आत्मा शिष्य की समस्त चेष्टाओं में उसके साथ रहती है और वह जहाँ भी जाता है, वह उसके साथ सरक्षक के समान बनी रहती है। ध्यान करते करते यह चीज इतने उच्च स्तर तक पहुँच जाती है कि वह सभी मनुष्यों और सभी वस्तुओं में गुरु को ही देखता है ठीक वैसे ही जैसे चुम्बक से प्रभावित पदार्थ अन्दर वस्तु को अपनी ओर खींच लेता है। इस स्थिति को सूफ़ियों या उन में 'शेख़ में लय कर देना' कहते हैं। गुरु अपने प्रतिभासित स्वप्नों द्वारा यह जान लेता है कि उसका शिष्य किस दर्जे तक पहुँच गया है और शिष्य की आत्मा उसकी आत्मा के साथ एक हो पाती है अथवा नहीं।

"इस अवस्था में पहुँचने पर शेख़ उस शिष्य को अपने सम्प्रदाय के संस्थापक दिवंगत पीर की आध्यात्मिक शक्ति के अर्पण कर देता है और अब शिष्य अपने शेख़ की आध्यात्मिक शक्ति के सहारे उस दरवेश का स्वप्न करता है। इस पीर में 'स्वयं को लय करना' कहते हैं। अब वह

उस पीर का मानो अङ्ग बन जाता है और उसकी समस्त आध्यात्मिक शक्तियों का अधिकारी बन जाता है।

"तीसरी अवस्था में भी यह शेख़ की आध्यात्मिक शक्ति के सहारे पैग़म्बर के निकट पहुँच जाता है और अब वह सभी वस्तुओं में पैग़म्बर को ही देखता है। इस अवस्था को 'पैग़म्बर में स्वयं को लय करना' कहते हैं।

"चौथी अवस्था में शिष्य परमात्मा तक पहुँच जाता है। वह सभी वस्तुओं में परमात्मा के दर्शन करने लगता है और अपने उपास्य (परमात्मा) के साथ एकत्व प्राप्त करता है।"

यहाँ पर वर्णित प्रक्रिया का एक सुन्दर और ठोस उदाहरण तवक्कुल बेग की प्रसिद्ध कहानी में मिलेगा, जो मोल्ला शाह के निर्देशन में इन सभी अनुभवों से होकर गुजरे थे। पूर्ण रूप से उद्धृत करने के लिये उनकी कथा बड़ी लम्बी है और हाल ही में प्रोफेसर डी० बी० मक्डानल्ड ने इसका अनुवाद अपनी पुस्तक 'रिलीजस लाइफ ऐण्ड ऐटीच्यूड इन् इस्लाम' में किया है। मैं ऊपर कही हुई चारों अवस्थाओं में से प्रथम के वर्णन वाले अनुच्छेद को उन्हीं के शब्दों में यहाँ उतार रहा हूँ —

'तब उन्होंने मुझे अपने सामने बैठने को कहा। मुझे ऐसा लगा मानो मेरी इन्द्रियों पर कोई नशा छाया हुआ है। उन्होंने मुझे अपने भीतर अपनी ही प्रतिच्छवि का ध्यान करने को कहा। उन्होंने मेरी आँखों पर पट्टी बाँध कर मेरी समस्त मानसिक शक्तियों को मेरे हृदय पर केन्द्रीभूत करने को कहा। मैंने आज्ञा पालन किया और क्षण भर में ही दैवी कृपा से और शेख़ की आध्यात्मिक शक्ति की सहायता से मेरा हृदय खुल गया। तब मैंने देखा कि उलटे हुए प्याले के सदृश कोई वस्तु मेरे भीतर विराजमान है। जब यह प्याला सीधा हो गया तो मुझे अपने भीतर असीम आनन्द की अनुभूति हुई। मैंने अपने गुरु से कहा, 'यह गुहा जहाँ मैं आपके सम्मुख बैठा हुआ हूँ यह हूबहू मेरे अन्तर में दिखाई पड़ती है और मुझे भान पड़ता है जैसे एक दूसरा तवक्कुल बेग एक

दूसरे मोल्लाह शाह के सामने बैठा हुआ है।' गुरू ने उत्तर दिया, बहुत ठीक! पहली छाया जो तुम्हें दिखाई पड़ती है वह गुरू की प्रतिच्छाया है। तब उन्होंने मुझ अपनी आँखें खोलने को कहा और मैंने उन्हें अपनी शारीरिक आँखों से अपने सामने बैठा हुआ देखा। तब उन्होंने मुझे फिर से अपनी आँखें बाँध लेने को कहा और मैंने अपनी आध्यात्मिक दृष्टि से उन्हें उसी प्रकार अपने सामने बैठा हुआ देखा। महान् आश्चर्य से मैं चिल्ला उठा, 'ऐ मेरे मालिक, मैं चाहे अपनी पार्थिव आँखों से देखूँ अथवा अपनी आध्यात्मिक दृष्टि से, मुझे केवल तुम्हीं सदैव दिखाई पड़ते हो।'"

फरि स्वामी द्वारा देखी गई और लिखित अपने ऊपर सम्मोहन प्रयोग की एक घटना नीचे दी जा रही है।

"काशग़र निवासी मौलाना सादुद्दीन थोड़ी 'तवज्जह्' (ध्यान को केन्द्रित करने) के पश्चात् चेतनाशून्य होने के चिन्ह प्रकट करने लगते थे। कोई भी जो इस परिस्थिति से अनभिज्ञ होता यह समझता कि उन्हें निद्रा आ रही है। जब मैंने पहले पहल उनका साथ किया तो एक दिन ऐसा हुआ कि जामा मस्जिद में मैं उनके सामने बैठा था। अपने अभ्यास के अनुसार वे मावाविष्टावस्था में हो गये। मैंने सोचा कि वे सो रहे हैं। अतएव मैंने उनसे कहा, 'यदि आपकी इच्छा थोड़ी देर तक विश्राम करने की हो तो आप मुझे बहुत दूर न प्रतीत होंगे।' वे मुस्कुराये और बोले 'यह स्पष्ट है कि तुम यह विश्वास नहीं करते कि यह निद्रा से भिन्न कोई वस्तु है।'"

निम्नलिखित उपाख्यान तो और भी बड़ी कठिनाइयाँ प्रस्तुत करता है -

"मौलाना निज़ामुद्दीन ख़ामोश का कथन है, 'एक दिन मेरे गुरू अलाउद्दीन अत्तार, प्रसिद्ध सन्त मुहम्मद इब्न अली हकीम का मज़ार देखने, जो तिरमीज़ में है, रवाना हुये। मैं उनके साथ नहीं गया वरन् घर पर ही रहा और अपनी 'तवज्जह्' द्वारा (अपने मन को केन्द्रित करके

सन्त की आध्यात्मिक शक्ति को अपने सम्मुख लाने में समर्थ हो गया यहाँ तक कि जब मेरे गुरू मजार पर पहुचे तो उन्होंने उस खाली पाया। इसका कारण उन्हें अवश्य ही मालूम हो गया होगा, क्योंकि वापस लौटने पर वे मुझे अपने नियन्त्रण में करने का उपक्रम करने लगे। मैंने भी अपने मन को केन्द्रीभूत किया किन्तु मुझे ज्ञात हुआ कि मैं एक कबूतर की भाँति हूँ और गुरू मेरा पीछा बाज की भाँति कर रहे हैं। जहाँ कहीं भी मैं गया गुरू सदैव मेरे पीछे मौजूद थे। अन्त में बचने से निराश होकर मैंने पैग़म्बर (अल्लाह उन्हें शान्ति दे) की आध्यात्मिक शक्ति की शरण ली और उसके अनन्त प्रकाश में लय हो गया। अब गुरू मेरे ऊपर नियन्त्रण करने में असमर्थ हो गये। अपनी तीव्र खीझ के कारण वे बीमार पड़ गये और मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी इसका कारण न जान सका।"

अलाउद्दीन के पुत्र ख्वाजा हसन अत्तार नियन्त्रण करने की ऐसी शक्तियों के अधिकारी थे कि वे केवल सङ्कल्प द्वारा किसी भी व्यक्ति आह्लाद की अवस्था में कर देते थे और उसे 'फ़ना' की वे अनुभूतियाँ प्रदान करते थे जिन्हें कुछ ही वर्षों दीर्घकालीन आत्मसंयम के पश्चात् मनुष्य सदा ही प्राप्त करते हैं। कहा जाता है कि वे शिष्यगण तथा दर्शनार्थी, जिन्हें उनका हाथ चूमने का सम्मान प्राप्त होता था, सदा अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ते थे।

कुछ सन्तों के बारे में यह विश्वास किया जाता है कि उनमें इच्छानुसार रूप धारण करने की शक्ति होती है। ऐसे अत्यधिक प्रसिद्ध सन्तों में मोसुल निवासी अबू अब्दुल्लाह भी एक थे जो क़दीब अल बान के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। एक दिन मोसुल के क़ाज़ी ने, जो उन्हें गहरीक काफ़िर मानता था, नगर की एक गली में उन्हें विपरीत दिशा से अपनी ओर आते देखा। उसने उन्हें पकड़ कर राजा के सम्मुख ले जाने तथा उन पर आरोप लगाने का अपने मन में सङ्कल्प किया, ताकि वे दण्डित किये जा सकें। यकायक उसने देखा कि क़दीब अल्-बान ने एक 'कुर्द'

का रूप धारण कर लिया है। उसकी ओर बढ़ते समय सन्त का रूप पुन बदल गया। इस बार उन्होंने मरुभूमि के एक अरब का रूप धारण कर लिया। और भी निकट आने पर अन्त में उन्होंने एक धनशास्त्री की आकृति और वेषभूषा धारण कर ली और चिल्ला कर कहा "हे क़ाज़ी! तुम तिस क़दीब अल्-यान का राजा के सम्मुख घसीट कर ले जाओगे और दण्ड दोगे?" क़ाज़ी अपने वैरभाव का प्रायश्चित करता हुआ सन्त का शिष्य हो गया।

अन्त में मैं निर्जीव पदार्थों द्वारा 'आज्ञापालन' अर्थात् बिना किसी पार्थिव साधन के चलायमान करने के दो कथित उदाहरण देना चाहता हूँ।

"जब जुल नून कुछ मित्रों से इस विषय पर बातचीत कर रहा था, उसने कहा, यह एक सोफ़ा (गद्देदार कुर्सी) है। यह कमरे में चक्कर लगायेगा, यदि मैं इसे ऐसा करने को कहूँ। जैसे ही उसने 'चल' शब्द का उच्चारण किया सोफ़ा कमरे का एक चक्कर लगाकर अपने स्थान पर लौट आया। दर्शकों में से एक नवयुवक फूट-फूट कर रोने लगा और उसके प्राण पखेरू उड़ गये। उन लोगों ने उसको उसी सोफ़ा पर लेटाकर दफ़नाने के लिए स्नान कराया।"

"अबीसेना, अबुल हसन ख़रक़ानी से मिलने गया और उसने तुरन्त ही एक लम्बी और गूढ़ बहस छेड़ दी। कुछ समय पश्चात् सन्त, जो एक निरक्षर व्यक्ति था ऊब गया। अतएव वह उठ खड़ा हुआ और बोला, "क्षमा कीजियेगा मुझे जाकर बगीचे की दीवार ठीक करनी है।" यह एक कन्नी लेकर बाहर चला गया। जैसे ही वह दीवार के ऊपर चढ़ा, कन्नी उसके हाथ से छूट कर नीचे गिर पड़ी। अबीसेना उसे उठाने को दौड़ा, किन्तु उसके पहुँचने के पहले ही कन्नी स्वयं ही उठकर सन्त के हाथों में पहुँच गई। अबीसेना ने अपनी ध्यान नियन्त्रण शक्ति खो दिया और रहस्यमत में विश्वास की जो ज्योति उसके हृदय में उस समय जगी वह वह उसके जीवन के अन्तिम काल तक, जबकि उसने दर्शन शास्त्र के लिये रहस्यवाद को छोड़ दिया, बनी रही।"

मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इस अध्याय में इस महान् विषय के साथ बहुत थोड़ा न्याय हो पाया है। सूफ़ीमत के इतिहासकार को, चाहे वह कितना ही दु:खी क्यों न हो, यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सन्तत्त्व के सिद्धान्त का एक मूलभूत स्थान है और सूफ़ीमत के व्यावहारिक परिणामों में इसका अत्यधिक प्रभाव है जैसे अाह्लाद (भावाविष्टावस्था) की श्रेणी वाले मनुष्यों की प्रमाणिकता को विनीत भाव से स्वीकार करना, उनकी कृपा पर निर्भर रहना, उनके मज़ारों के दर्शन करना, उनके अवशेषों की आराधना करना और प्रत्येक मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति को उनकी सेवा में लगा देना। केवल अपने अन्तःकरण के प्रकाश में परमात्मा की उपासना करना भयप्रद हो सकता है, किन्तु दूसरे के अन्तःकरण के प्रकाश में 'उसे' खोजना और भी अधिक भयङ्कर है। निर्धारित पवित्रता का कोई प्रतिकार नहीं है। मर्मी लेखकों ने इस सत्य को अनेक सुन्दर अनुच्छेदों में अभिव्यक्त किया है किन्तु मैं अलाउद्दीन अत्तार की जीवनी से कुछ पंक्तियाँ ही उद्धृत करके सन्तोष करूँगा। यह वही सन्त है जिसने, जैसा कि हमने देखा है, अपने शिष्य को सम्मोहित करने का व्यर्थ प्रयास इसलिए किया कि वह शिष्य द्वारा उसके साथ चली गई असम्मानसूचक चाल का प्रतिशोध लेना चाहता था, उसके जीवनकथा लेखक का कहना है कि उसने कहा था, "परमात्मा के सन्निकट रहना परमात्मा के प्राणियों के सन्निकट रहने की अपेक्षा अधिक उपयुक्त और श्रेयस्कर है।" यह बहुधा अपनी पवित्र वाणी से निम्नलिखित पद गाया करता था —

"तू ता के गोरे मर्दां रा परस्ती,
बगिर्दे कारे मर्दां गर्द व रस्ती।"

[तू पवित्रात्माओं के मज़ारों पर कब तक उपासना करता रहेगा? पवित्रात्माओं के कार्यों को कर और तू सुरक्षित हो जायगा।]

षष्टम् अध्याय

मिलनावस्था

"यह कहानी यहीं तक कही जा सकती है
जो कुछ इसके बाद होता है शब्दों में व्यक्त करने योग्य नहीं है।
इसे व्यक्त करने का तुम यदि सैकड़ों ढंग अपनाओ और आजमाओ,
तो भी व्यर्थ है इस रहस्य का उद्घाटन नहीं होता है।
तुम घोड़ और ऊँट की सवारी करके समुद्र-तट तक जा सकते हो,
उसके बाद तुम्हें काष्ठ-वाहन (नौका) से ही काम लेना पड़ेगा।
काठ का घोड़ा सूखी भूमि पर बेकार होता है,
किन्तु समुद्र-यात्रियों के लिये वही मुख्य वाहन है।
मौन ही यह काठ का घोड़ा है
मौन ही समुद्र-यात्रियों का मार्ग-दर्शक और सहारा है।"

(मसनवी—जलालुद्दीन रूमी)

कोई भी व्यक्ति इस अध्याय के विषय अर्थात् आत्मा यात्रा के चरम स्तर पर पहुँचे हुए रहस्यदर्शी की अवस्था को बिना यह अनुभव किए नहीं समझ सकता कि परमात्मा से मिलन के सभी प्रतीकात्मक वर्णन और इसकी प्रकृति सम्बन्धी सभी सिद्धान्त अँधेरे में टटोलते रहने के समान हैं। हम उस चरम के बारे में कुछ धारणा बना सकते हैं किन्तु उसकी यथार्थ अनुभूति प्राप्त करने वाले अवर्णनीय घोषित करते हैं। मैं केवल यही उत्तर दे सकता हूँ कि सभी मर्मी घटनाओं को समझने में हमारे सम्मुख यही कठिनाई उपस्थित होती है, यद्यपि निम्नतर स्तरों पर यह कम दृष्ट प्रतीत होती है और यदि कोई मौन रहने का सीख भी उस

मुस्लिम मत के गूढ़तम रहस्यों की अद्वितीय विवेक और योग्यता से व्याख्या करने से नहीं रोक सकी है।

इसका वर्णन करने को चाहे जिन शब्दों का प्रयोग किया जाय, मिलनावस्था साधारणीकरण प्रक्रिया का चरमोत्कर्ष है जिसके द्वारा आत्मा को उस प्रत्येक वस्तु से धीरे धीरे पृथक् कर लिया जाता है जो उसके लिए विजातीय है अर्थात् जो परमात्मा नहीं है। निर्वाण, जो केवल व्यक्तिगत सत्ता का अन्त होता है, के विपरीत 'फना' में, अर्थात् सूफी के अपने जागतिक अस्तित्व को लय कर देने में, 'बका' अर्थात् उसके वास्तविक अस्तित्व में सदा रहने का समावेश होता है। जिसका 'अहं' भाव मर जाता है वह परमात्मा में वास करता है और इस मृत्यु का अंतिम लक्ष्य 'फना' है जहाँ से 'बका' अथवा दैवी जीवन के साथ एकत्व प्राप्ति का प्रारम्भ होता है। संक्षेप में कह सकते हैं कि दैवत्व प्राप्ति ही मुसलमान रहस्यवादी का अन्तिम लक्ष्य होता है।

दसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में हुसैन इब्न मंसूर, जो अल् हल्लाज (ऊन धुनने वाला) के नाम से प्रसिद्ध है बगदाद में मौत के घाट उतार दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि उसके मृत्यु-दण्ड का कारण राजनैतिक प्रेरणा थी, किन्तु हमें यहाँ इससे मतलब नहीं है। सूली के चारों ओर एकत्रित भीड़ में शायद थोड़े ही लोग ऐसे थे जो यह विश्वास करते थे कि वह जो कुछ कहता था वही था शेष लोग उसका एक पाखण्डी काफिर की भाँति दण्डित किया जाना परम प्रसन्नता और प्रबल समर्थन के साथ देख रहे थे। उसने दो शब्दों में एक वाक्य "अनल हक़" (मैं ही सत्य हूँ) कहा था, जिसको इस्लाम ने उसका दोष की किन्तु जिसे वह कभी भुला न सका।

लुई मासिग्नों की हाल ही में प्रकाशित गवेषणाओं से यह पहले पहल सम्भव हो सका है कि यह बतलाया जाय कि हल्लाज स्वयं इस प्रसिद्ध सूत्र का क्या अर्थ करता था और यह निश्चयपूर्वक कहा जाय कि यह उन सनातन-पन्थी व्याख्याओं से मेल नहीं खाता जो परवर्ती काल के

विभिन्न सम्प्रदायों के सूफियों द्वारा की गई है। हल्लाज के अनुसार मनुष्य में दैवी सत्य विद्यमान रहता है। परमात्मा ने आदम को अपना ही प्रतिरूप बनाया। उसने अपने अनन्त प्रेम की वह प्रतिमा अपने से आगे बढ़ाया जिससे वह उसमें एक दर्पण की भाँति अपने को देख सके। इसीलिए उसने फरिश्तों को आदम की उपासना करने को कहा, (कुरान २ ३२) जिसमें वह उसी प्रकार अवतरित हुआ, जिस प्रकार ईसा में।

। "धन्य हो उसकी जिसने अपनी मनुष्यता में (आदम में) अपने ज्योतिर्मय दैवत्व को प्रकट किया,

और तब अपने प्राणियों के समक्ष खाने-पीने वाले (ईसा) के रूप में स्पष्ट प्रकट हुआ।"

चूँकि परमात्मा का 'नासूत' (मनुष्यत्व) मनुष्य की समस्त शारीरिक और आध्यात्मिक प्रकृति से मिल कर बना है, परमात्मा का 'लाहूत (दैवत्व) उस प्रकृति से अवतार को छोड़ कर अन्य किसी साधन द्वारा एकमेक नहीं हो सकता अथवा मासिकों के शब्दों में, बिना दैवी आत्मा के प्रविष्ट हुये (हुलूल) जैसा कि उस समय होता है जब मानव आत्मा देह में प्रवेश करती है यह एकत्व नहीं हो सकता। अपनी एक कविता में हल्लाज इस प्रकार से कहता है

"तेरी आत्मा मेरी आत्मा में मिल गई है जैसे मदिरा स्वच्छ जल में मिल जाती है।

जब स्पर्श करने वाला मेरा स्पर्श करता है देख, प्रत्येक दशा में 'तू' मैं ही है।"

आगे वह फिर कहता है —

"मैं वह हूँ जिससे मैं प्रेम करता हूँ और वह जिससे मैं प्रेम करता हूँ मैं ही है।

हम एक ही देह में निवास करने वाली दो आत्मायें हैं।

यदि तू मुझे देखता है तो तू उसे भी देखता है

देखता है ।"

और यदि तू उसे देखता है तो हम दोनों को देखता है ।"
हल्लाज द्वारा दिये गये इस विचित्र रूप में स्वयं को देवत्व प्रदान
करने का यह सिद्धान्त स्पष्ट रूप से ईसाई धर्म के मुख्य सिद्धान्त के
समान है, अतएव मुसलमानी दृष्टिकोण के अनुसार यह घोर 'कुफ्र' है।
यह सिद्धान्त शुद्ध रूप में केवल उसके निकटतम अनुयायियों में ही
बचा रह सका। 'हुलूलियों' की अर्थात् अवतारवाद में विश्वास करने
वालों की भर्त्सना सभी सूफीगण उसी उग्रता के साथ करते हैं जिस उग्रता
के साथ सनातनपन्थी मुसलमान करते हैं। किन्तु पूर्वकथित लोगों (सूफियों)
ने 'हुलूल' के सिद्धान्त की बिना झिझक निन्दा करने के साथ-साथ
हल्लाज को इसका शिक्षक होने के सन्देह से मुक्त करने का भरसक
प्रयास किया है। उसके बचाव में तीन मुख्य दलीलें दी जाती हैं
(१) हल्लाज ने 'हक्' (परम-सत्य) के विरुद्ध कोई अपराध नहीं किया,
किन्तु उसने 'शरीअत' के विरुद्ध गम्भीर अपराध किया, अतएव उसका
दण्डित किया जाना न्यायोचित था। उसने उस सर्वोच्च रहस्य को, जिसे
चुने हुये भक्तों के लिए ही सुरक्षित रखना चाहिये, सर्वसाधारण के समक्ष
घोषित करके 'अपने प्रभु का भेद प्रकट कर दिया।' (२) हल्लाज ने जो
कुछ कहा आह्लाद (मायानिष्ठावस्था) के उन्मादक प्रभाव में कहा। वह
समझता था कि वह दैवी सत्व के साथ एकमेक हो गया है, जब कि उसने
दैवी गुणों में से केवल एक के साथ एकत्व स्थापित किया था। (३)
हल्लाज यह बतलाना चाहता था कि परमात्मा और उसके बनाये जीवों
में कोई वास्तविक अन्तर या विलगाव नहीं है, क्योंकि परमात्मा के एकत्व
में सभी प्राणी अन्तर्हित हैं। जो व्यक्ति अपने जागतिक अहं से पूर्णरूप से
परे हो जाता है वही अपने वास्तविक अहं में वास करता है और या
वास्तविक अहं ही परमात्मा है। उस ऐश्वर्य में न 'मैं' का स्थान है
हम का और न 'तू' का ही। 'मैं', 'हम', 'तू', और 'वह' सब एक
वस्तु हैं। इसलिए 'अनल हक़' कहने वाला हल्लाज नहीं था वरन्
परमात्मा ही था, जो 'अहं' की चेतना से परे हो जाने वाले हल्लाज

१

मुख से इसका उच्चारण करता था, ठीक वैसे ही जैसे उसने मूसा से जलती हुई झाड़ी के माध्यम से बातचीत की थी।

अन्तिम व्याख्या को, जो 'अनल हक़' को एक अवैयक्तिक अद्वैतवादी स्वयं सिद्धि में परिवर्तित कर देती है, अधिकांश सूफी हल्लाज की सच्ची शिक्षा के रूप में ग्रहण करते हैं जलालुद्दीन रूमी ने एक सुन्दर गीत में कहा है कि कैसे 'एक ही ज्योति' विश्व भर में सहस्रों रूपों में चमकती है और कैसे 'एक ही सत्व' सदैव एक ही रहते हुये समय-समय पर पैग़म्बरों और सन्तों का रूप धारण करता रहता है और ये पैग़म्बर और सन्त मनुष्यों के समक्ष इसकी साक्षी देते हैं।

"प्रत्येक क्षण वह हरण करने वाला सौन्दर्य विभिन्न रूपों में प्रकट होकर आत्मा को आलोड़ित करता है और ग़ायब हो जाता है।
प्रत्येक क्षण वह 'प्रियतम' नया परिधान धारण करता है, अभी 'वह' वृद्ध है और अभी युवा।
अब 'वह' कुम्हार की मिट्टी रूपी पदार्थ की गहराई में कूद पड़ा—
'आत्मा' एक गोताख़ोर की भाँति कूद पड़ा।
और अभी वह कीचड़ की गहराइयों से ढला और पका हुआ निकल आया, तब 'वह' संसार में प्रकट हुआ।
'वह' नूह बना और उसकी प्रार्थना पर संसार में प्रलय की बाढ़ आ गयी और 'वह' स्वयं नाव में बैठ गया।
'वह' इब्राहीम बना और उसकी प्रार्थना पर संसार में प्रकट हुआ, आग की लपटें उसके लिए गुलाब के फूल बन गयीं।
कुछ दिनों तक यह पृथ्वी पर घूमता रहा अपने को आनन्द देने के लिये।
फिर 'वह' ईसा बना और स्वर्ग के गुम्बद पर चढ़ कर परमात्मा का ऐश्वर्य प्रकट करने लगा।
संक्षेप में, 'वह' ही प्रत्येक पीढ़ी में आया जाया करता था और उस ही तूने देखा है।

अन्त में 'वह' एक 'अरब' के रूप में प्रकट हुआ और संसार का
साम्राज्य हासिल कर लिया।
यह बदलता रहने वाला क्या है ! पुनर्जन्म की वास्तविकता क्या
है ! यह हृदयों का सुंदर विजेता—
तलवार बना और अली के हाथ में प्रकट होकर काल को काटने
वाला बना।
नहीं। नहीं। क्योंकि मनुष्य के रूप में 'अनल हक़' का उद्घोष
करने वाला भी 'वह' ही था।
यह व्यक्ति जो सूली पर चढ़ा मंसूर नहीं था यद्यपि मूर्ख लोग ऐसा
ही समझते हैं।
'रूमी' न कभी 'कुफ्र' के शब्द बोला है और न बोलेगा उस
अविश्वास मत करो।
जो कोई भी अविश्वास प्रकट करता है वह काफ़िर है और नरक
दण्डित होने वालों में एक है।"

यद्यपि पश्चिमी और मध्य एशिया से—जहाँ ईरानी राजाओं को उनकी प्रजा देवता-तुल्य मानती थी तथा जहाँ अवतारवाद, परमात्मा के मनुष्य के आकार का होने तथा पुनर्जन्म के सिद्धांत वहीं की उपज हैं—मानव-ब्रह्म का विचार न तो इतना अपरिचित था और न इतना अस्वाभाविक ही था कि सर्व साधारण की कर्तव्य भावना को बुरी तरह से नष्ट कर देता, किन्तु इस्लाम ने उस विचार को इस रूप में इस प्रकार से वर्णन किया कि अपने को मुसलमान कहने वाला कोई भी व्यक्ति इसे सहन न कर सका, ग्रहण करना तो दूर की बात है। यह दावा करना, कि दैवी और मानव प्रकृतियाँ मिश्रित और एकीभूत की जा सकती हैं, एकेश्वरवाद के सिद्धान्त से जिस पर इस्लाम धर्म आधारित है, इनकार करना है। किन्तु बाद के इतिहास को देखने से पता चलता है कि किस प्रकार से दैवत्व प्राप्ति की भावना को एकमेक होने की भावना मान लिया गया। इसका रिश्ता की सिद्धान्त—परमात्म

मनुष्य—ऊपर वर्णित विश्वात्मवादी सिद्धान्त में लुप्त हो गया। परमात्मा से विलग होकर कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है। मनुष्य उस सर्वोच्च सत्ता से उत्पन्न हुआ है अथवा उसका प्रतिबिम्ब या प्रतिरूप है। जिस वस्तु को वह अपनी वैयक्तिक सत्ता मानता है वह वास्तव में असत् है। वह न परमात्मा से विलग किया जा सकता है न मिलाया जा सकता है क्योंकि वह अस्तित्व हीन है। मनुष्य परमात्मा है फिर भी दोनों में एक अन्तर है। इब्नुल अरबी के अनुसार शाश्वत और नश्वर उस एक के ही दो पूरक अंग हैं। उनमें से प्रत्येक दूसरे के लिये आवश्यक है। संसार व प्राणी स्रष्टा की बाह्य कृतियाँ हैं और मनुष्य सृष्टि में प्रकटित परमात्मा की चेतना (चित्) है। किन्तु मनुष्य अपने मन के परिमित होने के कारण सभी विचारणीय बातों का एक साथ नहीं सोच सकता। इसलिये वह दैवी चेतना का एक अंश ही प्रकट कर पाता है। इसी कारण से उसे 'अनलहक़' (मैं ब्रह्म हूँ) कहने का अधिकार नहीं है। वह एक वास्तविकता है किन्तु 'वास्तविक सत्ता' नहीं है। हम देखेंगे कि अन्य सूफ़ीगण—उदाहरणार्थ जलालुद्दीन रूमी को ही लीजिये—अपने आह्लाद के क्षणों में इस कुछ-कुछ सूक्ष्म विभेद की उपेक्षा कर देते हैं।

यह कथन कि अपने व्यक्तिगत अहं के अनस्तित्व का बोध होने पर सूफ़ी सर्वत्र अपना परमात्मा के साथ एकाकार होने का बोध प्राप्त करता है देवत्व प्राप्ति के मुसलमानी सिद्धान्त को ऐसे शब्दों में सन्निहित कर देता है जिनसे हमारे पाठक गण परिचित हो चुके हैं। मैं अपने अपने शब्दों में और अपने विभिन्न लेखकों के विस्तृत उद्धरण देकर यह दिखाने का प्रयास करूँगा कि इस बोध का और व्यापक अर्थ दिया जा सकता है।

'फ़ना' के कई रूपों का विभेद किया जा चुका है। इनमें से सर्वोच्च रूप का, अर्थात् दैवी सत्य में लय हो जाने का पूर्ण वर्णन निष्कारी न करता है। उसने 'फ़ना' और फ़ानी' (लय हुआ) के स्थान पर 'मफ़क़ूद'

(खोज या साधना का अन्त) और 'बाक़िर' (वह साधक जो अपनी खोज या साधना का अन्त करके 'खोजे हुए पदार्थ' में लय हो जाता है) शब्दों का प्रयोग किया है। मूल पाठ और भाष्य में आने वाले कुछ मुख्य विचार नीचे दिये जाते हैं।

'बक़ा' प्रकाशमान है और वह भिन्नत्व के भाव को, जो अन्धकार तुल्य है, वैसे ही दूर करता है जैसे प्रकाश अन्धकार को दूर कर देता है। वह सभी अस्तित्व वाली वस्तुओं के नश्वर मूल्य को उनके असली और शाश्वत मूल्य में परिवर्तित कर देता है।

अतएव 'बाक़िर' काल और स्थान की परिधि का अतिक्रमण कर जाता है। "वह प्रत्येक घर में प्रवेश करता है किन्तु उसमें समा नहीं सकता प्रत्येक कूप का जल पीता है किन्तु उसकी पिपासा शान्त नहीं होती तब वह 'मेरे' (परमात्मा के) पास पहुँचता है और 'मैं' ही उसका घर हो जाता हूँ और वह 'मुझ में ही वास करने लगता है"—कहने का तात्पर्य यह है कि वह सभी दैवी गुणों को समझ लेता है और सभी मर्मी अनुभूतियों का ज्ञाता हो जाता है। वह केवल 'नामों' (गुणों) से ही सन्तुष्ट नहीं होता वरन् 'नामी' (परमात्मा) की खोज करता है। वह परमात्मा के सत्य का चिन्तन करता है और उसमें अपने रूप का सादृश्य पाता है। अब वह प्रार्थना नहीं करता। प्रार्थना तो मनुष्य की ओर से परमात्मा के प्रति होती है, किन्तु 'बक़ा' में तो सिवाय परमात्मा के कुछ भी नहीं रहता।

'बाक़िर' अपने पीछे करता रहने का ढोंग तक नहीं छोड़ जाता और न परमात्मा के सिवा कोई उत्तराधिकारी ही छोड़ता है। जब ध्यान का दृश्य भी उसकी चेतना से लुप्त हो जाता है तब वह स्वयं प्रत्यक्ष रूप हो जाता है। तब उसकी ईश्वर स्मृति का उद्गम ईश्वर ही होता है और उसका ज्ञान परमात्मा का ज्ञान होता है जो 'सत्य' को उसी प्रकार से अकेला देखता है जैसा कि वह प्रारम्भ में था।

हमें यह जानने की आशा करने की आवश्यकता नहीं कि यह तत्व

भूत होना, प्रतिनिधि होना या रूप परिवर्तित होना किस प्रकार से सम्भव होता है। यह सूफीमत का महान् विरोधाभास है। यह संसार में उन्नत मनुष्य में उस 'सत्ता' द्वारा किया गया महान् कार्य है जिसकी प्रकृति शाश्वत रूप से बौद्धधारियों की प्रकृति से बिल्कुल रहित है। जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, चाहे जैसी भी कल्पना किया जाय, यह परिवर्तन मनुष्य में ईश्वर की सत्ता को नहीं उतारता, जिसे 'हुलूल' कहते हैं, अथवा देवी और मानव प्रकृतियों में सादृश्य नहीं स्थापित करता, जिसे 'इत्तिहाद' कहते हैं। ये दोनों सिद्धान्त सामान्यतः अन्याय घोषित किये जाते हैं। अबू नस्र अल्-सराज ने अपनी पुस्तक 'किताब अल्-लुमा' के दो अनुच्छेदों में इन सिद्धान्तों की आलोचना की है —

"बग़दाद के कुछ रहस्यवादी इस ग़लत सिद्धान्त को मानते हैं कि जब वे अपने गुणों से परे हो जाते हैं तो उनमें परमात्मा के गुण आ जाते हैं। यह सिद्धान्त अवतारवाद (हुलूल) की ओर या ईसाइयों में ईसा के बारे में प्रचलित विश्वास की ओर ले जाता है। विनाशित सिद्धान्त को कुछ प्राचीन लोगों द्वारा प्रतिपादित बतलाया जाता है, किन्तु इसका सही अर्थ यह है कि जब कोई अपने गुणों से निकल कर परमात्मा के गुणों में प्रवेश करता है तो वह अपनी इच्छा से निकल कर परमात्मा की इच्छा में मिल जाता है—यह जानते हुए कि उसकी इच्छा उस परमात्मा द्वारा प्रदान की गई है और इस वरदान द्वारा ही वह अपने को अपने 'अहं' से पृथक् कर पाता है—यहाँ तक कि वह पूर्णरूप से परमात्मा में लीन हो जाता है। यह अद्वैतवादियों की एक अवस्था है। जिन लोगों ने इस सिद्धान्त में ग़लती की वे यह विचार न कर सके कि परमात्मा की विशेषताएँ परमात्मा नहीं हैं। परमात्मा और उसकी विशेषताओं में तादात्म्य स्थापित करना 'काफ़िर' होने का अपराध करना है, क्योंकि परमात्मा हृदय में नहीं उतरता बरन् जो वस्तु हृदय में उतरती है वह परमात्मा में विश्वास, 'उसकी' एकता में विश्वास और 'उसके' चिन्तन के प्रति सम्मान की भावना है।"

दूसरे अनुच्छेद में वह 'इत्तिहाद' के सिद्धान्त का खण्डन करने के लिए इसी प्रकार के तर्कों का प्रयोग करता है —

कुछ लोग खाना-पीना यह सोचकर त्याग देते हैं कि जब मनुष्य का शरीर कमज़ोर हो जाता है तो उसमें मानवी गुण समाप्त होकर दैवी गुण आ जाते हैं। इस सिद्धान्त को मानने वाले ना समझ लोग मनुष्य तथा मनुष्य के जन्मजात गुणों में विभेद नहीं कर पाते। मनुष्यता मनुष्य से उसी प्रकार नहीं विलग होती जिस प्रकार काली वस्तु से कालापन या उजली वस्तु से उजलापन। किन्तु मनुष्य के जन्मजात गुणों पर पड़ने वाला परम सत्ता का सर्वशक्तिशाली प्रकाश उनको परिवर्तित और रूपान्तरित कर देता है। मनुष्य के गुण मनुष्यता के मूलतत्व नहीं हैं। जो लोग 'फ़ना' के सिद्धान्त पर ज़ोर देते हैं उनका तात्पर्य यह होता है कि अपनी सभी क्रियाओं और अपने भक्ति के कार्यों में अपनी कर्तृत्व भावना को त्याग कर निरन्तर यह चिंतन किया जाय कि परमात्मा ही अपने भक्त के लिये इन सब कार्यों को करता है।"

हुज्वीरी इस विश्वास को, कि 'फ़ना' का अर्थ सत्ता का लोप और मनुष्य शरीर का नाश होना है और बक़ा' का अर्थ परमात्मा का मनुष्य में वास करने लगना है, मूर्खतापूर्ण बतलाता है। उसके कथनानुसार फ़ना का सच्चा अर्थ अपनी त्रुटियों के प्रति सचेत होना तथा उसकी चाहना को मिटा देना है। जो कोई अपनी नश्वर इच्छा से परे हो जाता है वह परमात्मा की नित्य इच्छा में वास करता है किन्तु न तो मनुष्य के गुण परमात्मा के गुण बन सकते हैं और न परमात्मा के गुण मनुष्य में आ सकते हैं।

हर के अन्दर मुल्ताने आतिश उफ्तद बे कहरे वे बसिफ़्ते वै
गर्दद। पस चूँ मुल्ताने आतिश वस्ले वै रा अन्दर वै मुबद्दल
मुनद। मुलाने इरादते हक़ अज़ मुल्ताने आतिश अवलातर।
अम्मा ए तसर्रुफ़े आतिश अन्दर वस्ले आहन अस्त व लेकिन
ऐने हुमानम्न कि हर्गिज़ आहन आतिश न गर्दद।
—हुज्वीरी

"अग्नि की शक्ति अग्नि में पड़ने वाली किसी भी वस्तु को अपने जैसा बना लेती है फिर परमात्मा की इच्छा शक्ति वा अग्नि की शक्ति से निश्चय ही बढ़ कर है। फिर भी अग्नि लोहे का गुण ही परिवर्तित करती है, उसका पदार्थ नहीं परिवर्तित करती, क्योंकि लोहा कभी भी आग नहीं हो सकता।"

अपने ग्रन्थ के एक दूसरे भाग में हुज्वीरी ने मिलन ('जाम') को ध्यान का काम्य वस्तु पर केन्द्रित करना कहा है। इसी प्रकार मजनूँ भी अपने विचारों को लैला पर केन्द्रित कर देता था जिससे उसे सारे संसार में केवल वही दिखाई पड़ती थी और सृष्टि की सारी वस्तुएँ उसकी दृष्टि में लैला का ही रूप धारण किये रहती थीं। कोई व्यक्ति बायजीद की गुफा पर आया और पूछा, "क्या बायज़ीद यहाँ हैं?" उसने उत्तर दिया, "क्या परमात्मा के सिवाय यहाँ अन्य कोई है!" हुज्वीरी आगे कहता है कि ऐसी सब दशाओं में वही सिद्धान्त लागू होता है जो इस प्रकार से है —

> खुदा बन्दे तआला मायए मुहब्बते खुद रा कि आँ यक जौहर मुजर्रद मतवज्जी य मकनून गर्दानीद य हर यके रा अज़ दोस्ताँ बर मेक़दारे गिरिफ़्तारिदे वै बर्गी बपुज़बे अज़ अजज़ाय आँ बुल मगरूम कर्द। आँ गाह जाय इन्सानियत य लेबास तबीयत व ग़ायीयए मेजाज़ व हेजाब रूह बरआँ फरो-गुज़ारद। ता आँ जुज़ ब कुव्वते हर अजज़ाए कि बदू मौसूल बूद बकिश्ते खुद मी गर्दानीद ता गिले मोहिब जुमल्ह मोहब्बत शुद य हमा हरकात व लहज़ातश मुआनिदे आँ। अर्बाँ पूर कि अर्बाबे मआनी व अरबाबुम निशान मर आँ रा जम नाम करदन्द।
>
> —हुज्वीरी

"परमात्मा अपने प्रमरूपी पदार्थ को विभाजित करके उसका एक एक कण अपने भक्तों में से प्रत्येक को उनकी उमंग प्रति आनन्द विभोरता

के अनुपात में विशेष अनुग्रह करके प्रदान करता है। फिर वह उस कण पर हाड़-मांस, मानव प्रकृति, स्वभाव और आत्मा के आवरण डाल देता है, ताकि अपनी शक्तिमान क्रिया शीलता द्वारा वह कण अपने से सम्बद्ध सभी कणों को अपने स्वरूप में रूपान्तरित कर ले, यहाँ तक कि प्रेमी का शरीर पूर्णतय प्रेममय हो जाय और उसकी क्रियायें और भाव भंगिमा प्रेम की अनेक विशेषतायें बन जाय। इस अवस्था को वे लोग जो आंतरिक ज्ञान को मानते हैं और वे जो बाह्य अभिव्यक्ति को मानते हैं, समान रूप से 'मिलन' कहते हैं।"

फिर वह हल्लाज के निम्नलिखित पद उद्धृत करता है —

लब्बैका लब्बैका या सय्यदी व मौलाई,
लब्बैका लब्बैका या मक़सदी व मानाई।
या ऐना ऐने वजूदी या मुन्तहा हम मी,
व या मन्तक़ी व इशाराती व ईमाई।
व या कुल्ल कुल्ली व या समइ व या बसरी,
व या जुमलती व तबाईज़ी व अजज़ाई॥ —हल्लाज

'ऐ मेरे मालिक और प्रभु! तेरी ही इच्छा चले,
ऐ मेरे ध्येय और अर्थ! तेरी ही इच्छा चले।
ऐ मेरी सत्ता के सत्य, मेरी अभिलाषा के लक्ष्य
ऐ मेरी वाणी, मेरे संकेत और मेरी भाव-भंगिमा,
ऐ मेरे सर्वस्व, ऐ मेरी दृश्य शक्ति और श्रव्य शक्ति
ऐ मेरे समग्र, मेरे मूलतत्व और मेरे कण!"

कर्त्ता और कर्म के मायाजाल से बाहर निकला हुआ आह्लादित व्यक्ति, जो सभी सीमाओं को लाँघ कर 'एकत्व' प्राप्त कर चुका है, न तो यही कह सकता है कि वह कुछ नहीं है और न यही कह सकता है कि वह सब कुछ नहीं है। 'निषेधात्मक ढंग' के उदाहरण के लिये जलालुद्दीन रूमी के एक गीत की प्रारम्भिक पंक्तियाँ ले लीजिये, जिन्हें मैंने

फ़ारसी छन्दों का यथासम्भव अनुकरण करते हुए अपनी भाषा में छन्दोबद्ध करने का प्रयास किया है।

अरे! जब मैं अपने को ही नहीं जानता तो मैं परमात्मा के नाम से क्या करूँ?

न मैं 'क्रास' की उपासना करता हूँ न 'हलाल' की, मैं न 'आतर' हूँ न यहूदी।

घर मेरा न पूर्व में है न पश्चिम में, न पृथ्वी पर न समुद्र में, न मैं फरिश्तों के सामान हूँ न परियों के,

मैं न अग्नि से बना हूँ न पवन से, न धूल से बना हूँ और न ओस से।
मैं न सुदूर चीन में पैदा हुआ न सक्सीन में और न बलगार में

मैं न भारत में पैदा हुआ, जहाँ पाँच नदियाँ हैं, न इराक़ में, न खुरासान में।

मेरा वास न इस लोक में है, न परलोक में, न नरक में और न स्वर्ग में

मैं न 'आदम' और 'रिज़वान' से पतित हुआ न 'आदम' का वंशज हूँ।

स्थान की विशाल सीमाओं से परे एक स्थान में, एक ऐसे भूखण्ड में जिसके चिन्ह की परछाईं भी नहीं मिलती,

मैं देह और आत्मा की सीमाओं से आगे बढ़कर अपने 'प्रियतम' की आत्मा में नये सिरे से वास करता हूँ।"

जलालउद्दीन द्वारा ही लिखित निम्नलिखित कविता अपनी सम्बन्धी चेतना के विषयानुरूप रूप की अभिव्यक्ति करती है —

"ऐ मुसलमानो, यदि संसार में कोई प्रेमी है तो वह मैं हूँ।
यदि कोई विश्वासी या काफ़िर या ईसाई साधु है तो वह मैं हूँ।
मैं ही शराब की तलछट हूँ, साक़ी हूँ, गवैया हूँ, वीणा हूँ, सङ्गीत हूँ।

मैं ही माशूक हूँ, शमा हूँ, सुरापान हूँ और सुरापान किये हुओं की मस्ती हूँ।

संसार के बहत्तर धर्मों और सम्प्रदायों का वास्तविक अस्तित्व नहीं है।

क़सम अल्लाह की ! मैं ही प्रत्येक धर्म और सम्प्रदाय हूँ।

क्या तू जानता है कि क्षिति, जल, पावक और समीर क्या हैं ?

क्षिति, जल, पावक और समीर ही नहीं, देह और आत्मा भी मैं ही हूँ।

सत्य और असत्य, भला और बुरा, कठिन और सरल, आदि और अन्त,

ज्ञान और विद्या तपश्चर्या, दया और विश्वास—सब मैं ही हूँ।

विश्वास रख कि नरकाग्नि और उससे निकलती लपटें।

स्वर्ग और 'अदन' और 'हूरें' (अप्सरायें) सब मैं ही हूँ।

यह पृथ्वी और स्वर्ग और यह सब जो उनमें है।

फ़रिश्ते, परियाँ, जिन और मनुष्य—सब मैं ही हूँ।"

जो कुछ जलालुद्दीन ने आह्लाद के क्षणों में कहा है वही हेनरी मोर ने विगत अनुभव के रूप में कहा है।

वह कहता है, "मनुष्य की आत्मा की वह अवस्था कितनी सुन्दर और कितनी शानदार होती है जबकि परमात्मा की शक्ति उसको (आत्मा को) शिथिल करके उसे अपने साथ पृथ्वी और स्वर्ग से बाहर निकाल ले जाती है, उसका सम्पूर्ण संसार से एकत्व स्थापित करती है तथा एक क्रम से उसे जीवित होने की अनुभूति देती है। जो इस अवस्था में होता है वह सभी वस्तुओं को 'एक' देखता है और यदि वह उस समय अपने बारे में सोच सकता है तो अपने को वह 'समग्र' व एक अंश के रूप में देखता है।"

कुछ सूफ़ियों के लिये 'फ़ना' रूपी आह्लाद में तल्लीन हो जाना ही उनकी यात्रा का अन्त है। उसके पश्चात् उनमें और संसार में कोई

सम्बन्ध नहीं रह जाता। उनमें अपने 'अह' का कुछ भी शेष नहीं रह जाता उनका व्यक्तिगत अस्तित्व मर जाता है। 'एकत्व' में विसर्जित होकर न उन्हें धर्म का ज्ञान रहता है, न धार्मिक नियमों का और न किसी प्रकार की दृश्यमान सत्ता का। किन्तु परमात्मा के नशे में मदहोश वे भक्तगण, जो फिर कभी संयम नहीं धारण करते, सर्वोच्च पूर्णत्व से नीचे रह जाते हैं। देवत्व प्राप्ति की पूर्ण परिधि में देवता की अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग दोनों रूपों का—एक और अनेक का, हकीकत (सत्य) और शरीयत (नियम) का समावेश होना चाहिये। बिना सृष्टिकर्ता परमात्मा के शाश्वत जीवन में प्रवेश किये, जो उसकी कृतियों में प्रकट हुआ है केवल पाशविक प्रवृत्तियों से छुटकारा पा जाना ही पर्याप्त नहीं है। 'फना' अर्थात् निजत्व के मिटा देने के पश्चात् परमात्मा में वास करना ('बक़ा') पूर्ण मनुष्य (इन्सानुल-कामिल) का मुख्य चिन्ह है। ऐसा व्यक्ति केवल परमात्मा की ओर अर्थात् अनेकत्व से एकत्व की ओर ही यात्रा नहीं करता, वरन् वह परमात्मा में और परमात्मा के साथ यात्रा करता है अर्थात् वह सदैव निमग्नावस्था में रहता है और परमात्मा के साथ ही इस दृश्यमान जगत में, जहाँ से वह चला था, वापस लौटता है और अनेकत्व में एकत्व को प्रकाशित करता है। इस अवतरण में "वह शरीयत को अपना बाहरी लिबास और मार्गी पंथ को अपना भीतरी लिबास बनाता है, "क्योंकि वह धार्मिक नियमों में बताये गये कर्त्तव्यों का पालन करते हुए 'हकीकत' (सत्य) को नीचे उतार कर मनुष्यों के समक्ष प्रदर्शित करता है। जैसा कि किसी महान् ईरानी रहस्यवादी ने कहा है, उसके बारे में भी यह कहा जा सकता है कि —

"वह परमात्मा की ओर आन्तरिक प्रेम के कारण जाता है, अर्थात् शाश्वत कार्य में लगता है, और वह परमात्मा में अपनी फलीभूत होने वाली रुचि के कारण प्रवेश करता है, अर्थात् शाश्वत निवास करने लगता है। यद्यपि वह परमात्मा में वास करता है फिर भी वह सभी निर्मित वस्तुओं की ओर उनके प्रति प्रेम भावना से जाता है और उनके

साथ पवित्रता और सदाचार का व्यवहार करता है। और यही आध्यात्मिक जीवन का सर्वोच्च शिखर है।"

अजीजुद्दीन तिलिमसानी ने अपने निश्शारी पर लिखित भाष्य में चार रहस्यवादी यात्रायें बतलाई हैं

पहली का प्रारम्भ 'मारिफ़त' (ज्ञान) से और अन्त 'फ़ना' (पूर्ण लय होने) म होता है ।

दूसरी का प्रारम्भ उस समय होता है जब 'फ़ना' का स्थान 'बक़ा' ले लेती है।

जो इस अवस्था को प्राप्त कर चुकता है वह 'हक़' में, हक़ के साथ और 'हक़' की ओर यात्रा करता है तब वह 'हक़'-स्वरूप हो जाता है। इस प्रकार यात्रा करते हुये आगे बढ़ते हुये वह 'क़ुत्ब' की स्थिति में पहुँच जाता है, जो पूर्ण-मानव की स्थिति है। वह आध्यात्मिक जगत का केन्द्र बन जाता है जिससे मनुष्यों द्वारा पहुँचा जाने वाला प्रत्येक बिन्दु और प्रत्येक सीमा, चाहे वे दूर हों या निकट हों, उसकी स्थिति से समान दूरी पर होते हैं, क्योंकि सभी स्थितियाँ उसकी स्थिति के चारों ओर घूमती हैं और 'क़ुत्ब' के लिये दूरी और नजदीकी में कोइ अन्तर नहीं होता है। इस सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त मनुष्य क लिए इल्म, मारिफ़त और फ़ना (ज्ञान, ब्रह्म ज्ञान और लय होना) उस मनुष्य रूपी समुद्र में मिलने वाली नदियों क समान हैं, जिनके द्वारा वह जिसे चाहता है फिर से भर देता है। उसे दूसरों को परमात्मा का मार्ग दिखाने का अधिकार है और इसके लिये उस अपने सिवाय अन्य किसी स अनुमति नहीं लेनी पड़ती। देवदूतत्व का द्वार बन्द हो जाने क पूर्व यदि वह होता तो देवदूत की पदवी का अधिकारी होता, किन्तु हमारे समय में 'आध्यात्मिक गुरू' या शेख हो उसकी उपर्युक्त पदवी है। जो लोग उसकी सहायता की याचना करते हैं उनके लिए यह वरदान-स्वरूप होता है, क्योंकि यह सभी मनुष्यों की जन्मजात

योग्यताओं को समझता है और ऊँट-चालक की भाँति साधक को उत्तर पर जल्दी से पहुँचा देता है।

तीसरी यात्रा में वह 'पूर्ण मानव' अपना ध्यान परमात्मा के प्राणियों पर या तो देवदूत के रूप में या आध्यात्मिक गुरु (शेख) के रूप में देता है और अपने को उन लोगों पर प्रकट करता है जो प्रसन्नतापूर्वक अपनी अन्तर्शक्तियों से मुक्त हो जाते हैं। वह प्रत्येक व्यक्ति पर उसकी योग्यता अनुसार प्रकट होता है, यथा विचारात्मक धर्म को मानने वाले के समक्ष धर्मशास्त्री के रूप में पूर्ण चिन्तन का आनन्द न उठाये हुए चिन्तनशील व्यक्ति के समक्ष 'आरिफ' अर्थात् ब्रह्म ज्ञानी के रूप में, आरिफ के समक्ष वैयक्तिक सत्ता से पृथक्कर पर 'वाकिफ' के रूप में तथा वाकिफ' के समक्ष 'कुत्ब' के रूप में। यह सूफीवादियों की प्रत्येक स्थिति का क्षितिज (अन्तिम सीमा) होता है और प्रत्येक श्रेणी के अन्वेषकों (साधकों) की अनुभूतियों की विकासशील सीमा से भी आगे बढ़ जाता है।

चौथी यात्रा का सम्बन्ध साधारणतया शारीरिक मृत्यु से होता है। पैग़म्बर ने जब अपनी मृत्यु शय्या पर यह कहा कि 'मैं सर्वोच्च साथियों को चुनता हूँ" तो उसका संकेत इसी की ओर था। जैसा कि [illegible] ने गूढ़ पदों में इसका वर्णन किया है, उसके अनुसार इस यात्रा में पूर्ण मानव सभी दैवी गुणों को प्राप्त करने के पश्चात् वह दर्पण बन जाता है जो परमात्मा को स्वयं उसके समक्ष प्रदर्शित करता है।

"जब मेरा 'प्रियतम' प्रकट हो,
तो मैं 'उसे' किस आँख से देखूँ!
उसकी आँख से न कि अपनी आँख से,
क्योंकि 'उसके' सिवाय स्वयं उसको अन्य कोई नहीं देखता।"

—इब्नुल फार।

आत्मा के भीतर का प्रकाश, जिसके द्वारा वह देखता है वह आँख तथा इसका दृश्य विषय, सब 'एक' ही हैं।

सत्य की खोज करने वाले सूफी का अनुसरण करते हुये हम ऐसे स्थान पर पहुँच गये हैं जहाँ वाणी की गति कुण्ठित हो जाती है। उसकी प्रगति शायद ही कभी इतनी सरल और अभग होती हो जैसी इन पृष्ठों में प्रकट होती है। लोकोक्ति में कही गई नशे के बाद की खुमारी उन तीव्र शुष्कता और तीव्र वेदना के क्षणों के समानान्तर ही होती है जो कभी-कभी आह्लाद की निम्नतर और उच्चतर दशाओं के बीच के अन्तर को मिटाते हैं। ऐसी अनुभूति का वर्णन, जिसे ईसाई लेखकों ने आत्मा की अन्धकारमयी रात्रि कहा है, मुसलमान सन्तों की प्राय किसी भी जीवन कथा में मिल सकते हैं। जामी ने अपने ग्रन्थ 'नफहात-उल्-उन्स' में एक जगह कहा है कि —

"कोई एक दरवेश, जो प्रसिद्ध सन्त शहाबुद्दीन सुहरवर्दी का शिष्य था, परमात्मा के एकत्व का चिंतन करते करते आह्लाद की महान् अवस्था में था और 'फ़ना' की स्थिति में था। एक दिन वह रोने और विलाप करने लगा। शेख़ शहाबुद्दीन के यह पूछने पर कि उसे क्या दुःख है, उसने उत्तर दिया, देखिये, अनकत्व की बाधा ने मुझे 'एक' के दर्शन से वंचित कर दिया। मैं अस्वीकार कर दिया गया हूँ और अपनी पूर्वावस्था को पाने में असमर्थ हूँ। शेख़ ने बतलाया कि यह 'बक़ा' की स्थिति का पूर्वाभास है और उसकी वर्तमान दशा उसकी पहली दशा की अपेक्षा अधिक उच्च और उत्कृष्ट है।"

क्या परमात्मा में अन्तिम रूप से मिल जाने पर व्यक्तिगत सत्ता शेष रह जाती है? यदि व्यक्तिगत सत्ता का अर्थ परमात्मा से भिन्न—विलग नहीं—चेतनामय अस्तित्व है तो अधिकांश वरिष्ठ मुसलमान मर्मी कहेंगे "नहीं!" जिस प्रकार से वर्षा की एक बूंद महासागर में विलीन होकर नष्ट नहीं होती बल्कि अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खो देती है उसी प्रकार आत्मा (रूह) भी शरीर से निकल कर सर्वव्यापक परमात्मा का अविभक्त अंग बन जाती है। यह सच है कि जब सूफी लेखकगण मर्मी की मिलनावस्था की व्याख्या प्रेम और विवाह के शब्दों में करते

हैं तो वे व्यक्तिगत सत्ता का विचार मिटा नहीं देते क्योंकि वास्तव में वे ऐसा कर ही नहीं सकते, किन्तु ऐसे स्वरूप उस विश्वात्मवाद से, जिसमें सभी भेद मिट जाते हैं, अवश्य ही भिन्न नहीं होते। 'विश्वात्मा' में सामाजिकीय मिल जाना पृथ्वी पर एक दूसरे से प्रेम करने वाली आत्माओं के लिये उच्च-कोटि का कल्पनीय आनन्द है।

'कितना सुन्दर होगा वह क्षण जब हम, तू और मैं, महल में एक साथ बैठे होंगे,

तेरी और मेरी दो आकृतियाँ होंगी, दो रूप होंगे, किन्तु आत्मा एक ही होगी।

जब तू और मैं साथ-साथ वाटिका में जायेंगे,

बाग के रंग और चिड़ियों की चहक हमें अमरत्व प्रदान करेगी।

स्वर्ग के तारे आकर हमें घूर घूर कर देखेंगे,

हम, तू और मैं, उन्हें उस 'चन्द्रमा' को दिखा देंगे।

तू और मैं व्यक्तिगत सत्ता से परे होकर आह्लाद की अवस्था में मिल जायेंगे,

खूबसूरत बकवास से सुरक्षित होकर तू और मैं आनन्दित होंगे।

उस स्थान पर जहाँ तू और मैं उन्मुक्त होकर विचरेंगे

स्वर्ग के चमचमाते पंख वाले पक्षी ईर्ष्या से अपना हृदय चबायेंगे।

यह सबसे बड़ा आश्चर्य है कि तू और मैं यहाँ एक ही कुञ्ज में बैठे हैं और साथ ही साथ।

इस समय तू और मैं इराक और खुरासान दोनों स्थानों पर हैं।"

—जलालुद्दीन रूमी

इसलिए पाश्चात्य अध्यात्मवाद को यह मानने का विशेष महत्व हो, सामान्य में अपना भाग लेने की आशा और मानव आत्मा का व्यक्तिगत सत्ता का अमरत्व रूप में वैसा ही गम्भीर और दृढ़ पूर्ण उत्साह भर देता जैसा व्यक्तिगत जीवन के मरणोपरान्त चालू रहने में विश्वास करने वाले में होता है। भौतिक जगत में मनुष्य के विश्व का

वर्णन करते हुये जलालुद्दीन उसके आगे बढ़कर आध्यात्मिक जगत में पहुँचने की पूर्व कल्पना करता है और अपने को परमात्मा-रूपी महा सागर में विलीन कर देने के लिये हृदय से निकली प्रार्थना करता है —

अव्वल जमाद बूदी आख़िर नबात गश्ती।
आ गह शुदी तो हैवाँ ईं कर तू चू निहानस्त॥
गश्ती अजाँ पल इन्साँ बाइल्मो अक़्लो ईमाँ।
बिनगर चे गिल शुदाँ तन कू जुज्वे खाक़दानस्त॥
जे इन्साँ चु सैर करदी बेशक फ़रिश्ता गरदी।
ते ईं जमी अजाँ पस जायत बर आस्मानस्त॥
बाज़ अज़ फ़रिश्तगी हम बगुज़र बरो दरायम।
ता क़तरेय तो बहरे गरदद कि सद उमानस्त॥
बगुज़र अजीं बलद तू मीगो जे जाने अहद तू।
गर पीर गश्त जिस्मत चे ग़म चु जाँ जवानस्त॥

"मैं खनिज रूप में मरा और पौधा हुआ, पौधे से मर कर मैं जानवर हुआ, पशु से भी मरकर मैं मानव हुआ, मैं क्यों डरूँ, मैं मरने से कम कब हुआ ? किन्तु एक बार फिर मैं मनुष्य रूप में मरूँगा, ताकि मैं फ़रिश्तों के समकक्ष हो जाऊँ, किन्तु मुझे फ़रिश्तों से भी आगे बढ़ना पड़ेगा क्योंकि परमात्मा के सिवाय सभी नश्वर हैं। अपनी फ़रिश्ते की आत्मा का परित्याग करने पर मैं वह हो जाउँगा जिसकी किसी मन ने कभी कल्पना भी नहीं की। मेरा अस्तित्व मिट जाने दो ! क्योंकि अनस्तित्व से ही यह घोषणा निकलती है हम 'उसके' (परमात्मा के) पास लौटेंगे।"

प्रोफेसर रेनाल्ड ए० निकोल्सन : संक्षिप्त परिचय

प्रोफेसर रेनाल्ड एलीन निकोल्सन का नाम उन प्रसिद्ध योरपीय विद्वानों में बड़े आदर के साथ लिया जाता है जिन्होंने फ़ारसी एवं अरबी साहित्यों का गंभीर अध्ययन और अनुशीलन करके उनके महत्वपूर्ण ग्रंथों के सम्पादन तथा अनुवाद के स्पष्टीकरण में विशेष भाग लिया है तथा जिनके ऐसे कार्य के लिये हम उनके प्रति सदा ऋणी रहेंगे। प्रोफेसर निकोल्सन का जन्म सन् १८६८ ई० में हुआ था। इन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त की, प्रोफेसर ई० जी० ब्राउन की शिष्यता स्वीकार कर उनसे फ़ारसी-साहित्य पढ़ा तथा डी-लिट की डिग्री अर्जित कर एबर्डीन से आनरेरी एल्० एल्० डी० की उपाधि भी उपलब्ध कर ली। वे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में, सन् १९०२ ई० से लेकर १९२६ ई० तक फ़ारसी के प्राध्यापक रहे और फिर वहीं पर प्रोफेसर ब्राउन की जगह अरबी के अध्यापक भी हो गये। ये ज्यों ज्यों अपने अध्ययन में अग्रसर होते जाते थे वैसे ही अपने प्रिय विषय के सम्बन्ध में प्रायः लिखते भी जाते थे जिसका परिणाम यह हुआ कि न केवल इन्होंने कुछ स्वतन्त्र ग्रंथों की रचना कर डाली, अपितु कई प्रसिद्ध ग्रंथों के अनुवाद और संक्षिप्त संस्करण भी प्रकाशित कर दिये, इन ग्रंथों के अतिरिक्त इन्होंने समय-समय पर कतिपय उत्कृष्ट निबन्ध भी लिखे हैं जिनका महत्व कम नहीं ठहराया जा सकता। सन् १९४५ ई० के अन्त में लगभग ६७ वर्षों की आयु पाकर इनका देहान्त हो गया। इनके प्रकाशित ग्रंथों में से अधिकांश के नाम उनके संक्षिप्त विवरण के साथ, निम्नरूप में दिये जा सकते हैं —

(१) सेलेक्टेड पोयम्स फ्राम दी दीवान इ शम्स तब्रीज़ (कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस, १८९८) जिसमें प्रसिद्ध मौलाना जलालुद्दीन रूमी रचित

कविताओं के संग्रह से विशिष्ट रचनाओं को चुनकर उन्हें सानुवाद प्रकाशित किया गया है। इस पुस्तक का एक आलोचनात्मक परिचय उर्दू में, 'इन्तखाब दीवान शम्सतबरेज़" के नाम से गोरखपुर के 'आसी प्रेस से छपा है और इसके लेखक कोई अब्दुल मालिक 'आरवी' नाम के सज्जन हैं जिन्होंने प्रोफेसर निकोल्सन के साथ पत्र व्यवहार भी किया था।

(२) प्रसिद्ध सूफी कवि फरीदुद्दीन अत्तार के फ़ारसी ग्रन्थ "तज़किरातुल औलिया" की आलोचनात्मक विस्तृत व्याख्या जो, सन् १६०५ ई० में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से लिखी जाकर, लंदन से प्रकाशित हुई है।

(३) ए लिटरेरी हिस्ट्री आफ् दी अरब्स—जो ई० जी० ब्राउन की हिस्ट्री आफ् परशियन लिट्रेचर के आदर्श पर लिखित है।

(४) उमर खय्याम की "रूबाइयात" का अंग्रेजी अनुवाद जो लंदन से सन् १६११ ई० में प्रकाशित हुआ है।

(५) सूफी कवि मुहीउद्दीन इब्न अरबी के अरबी ग्रन्थ 'अल् अशवाक" की अरबी ग़ज़लों का अंग्रेजी में प्रायः अक्षरशः अनुवाद जिसमें प्रोफेसर निकोल्सन ने उस भावार्थ का भी विवरण दे दिया है जिसे मूल रचयिता ने लिखा था। यह भी लंदन से सन् १६११ ई० में छपी है।

(६) सूफ़ीमत पर फ़ारसी में लिखी गई प्रसिद्ध पुस्तक 'कश्फुल महजूब" का अंग्रेजी अनुवाद। इसका मूल लेखक अल् हुजवेरी था और यह पुस्तक भी सन् १६११ ई० में ही लंदन से प्रकाशित हुई है।

(७) 'दी मिस्टिक्स आफ् इस्लाम (लंदन, १६१४) जो सूफ़ीमत की स्पष्ट व्याख्या करने वाली पुस्तक है। इसे प्रोफेसर निकोल्सन ने अपने बीस वर्षों के अध्ययन एवं चिन्तन के फलस्वरूप अंग्रेजी में लिखा है और प्रस्तुत पुस्तक इसी का हिन्दी अनुवाद है।

(८) अल्हर्जावेरी की पुस्तक 'किताब अल् लुमा" जो मूलतः अरबी भाषा में थी उसकी प्रोफेसर निकोल्सन ने एक आलोचनात्मक व्याख्या लिखी है तथा उसे, शब्दकोशादि कर, महत्वपूर्ण अंशों के साथ, उन्होंने लंदन से ही सन् १६१४ ई० में प्रकाशित किया।

(६) डाक्टर सर मुहम्मद इकबाल के फारसी ग्रन्थ "असरारे खुदी" का भी अंग्रेजी अनुवाद करके उन्होंने इसे १६२ ई० में लन्दन से प्रकाशित कराया है और उसके प्रारम्भ में मूल लेखक की विचारधारा के सम्बन्ध में एक भूमिका' भी जोड़ दी है।

(१०) उन्होंने इसी प्रकार इब्न अल् बल्खी के ग्रन्थ 'फारसनामा' का भी अंग्रेजी अनुवाद करके उसे सन् १६२१ ई० में लन्दन में छपवाया है।

(११) उन्होंने अंग्रेजी में 'इस्लामी अध्यात्म' के विषय में भी एक पुस्तक लिखी है और उसे सन् १६२१ ई० में कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित किया है।

(१२) इसी प्रकार उन्होंने एक अन्य पुस्तक 'स्टडीज़ इन इस्लामिक मिस्टिसिज़्म के नाम से भी लिखी है और उसे भी उन्होंने सन् १६२१ ई० में केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस से ही प्रकाशित किया है।

(१३) उन्होंने एक और भी ऐसी ही पुस्तक 'पूर्वी देशों' के विषय में अंग्रेजी में लिखकर उसे प्रोफेसर ई० जी० ब्राउन की ६० वीं वर्ष गांठ के अवसर पर सन् १६२२ ई० में केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित कराया है।

(१४) कतिपय चुनी हुई कविताओं तथा गद्यमय अंशों का अंग्रेजी अनुवाद करके उन्होंने उसे सन् १६२२ ई० में केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस से ही छपवाया है और यह पुस्तक भी कम महत्व की नहीं कही जा सकती।

(१५) 'दी आइडिया आफ् परसनालिटी इन सूफ़िज़्म' प्रोफेसर निकोल्सन के उन तीन भाषणों का संग्रह है जिन्हें उन्होंने लन्दन विश्वविद्यालय में दिया था तथा जो कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस से ही सन् १६२३ ई० में प्रकाशित है।

(१६) प्रोफेसर निकोल्सन का सबसे बड़ा ग्रन्थ वह है जो मौलाना रूमी की प्रसिद्ध 'मसनवी" का अंग्रेजी भाषान्तर है। इस प्रस्तुत करने

में उन्होंने बड़ा परिश्रम किया तथा इसे आठ भागों में प्रकाशित करने का सकल्प किया था।

(१७) 'रूमी पोयट एण्ड मिस्टिक' जिसमें उन्होंने मौलाना रूमी की चुनी हुई रचनाओं का अनुवाद 'भूमिका' एव टिप्पणियों के साथ, प्रस्तुत करके प्रकाशित करना चाहा था, किन्तु जो उनकी मृत्यु हो जाने पर सन् १९५ ई० में लदन में ही प्रकाशित हुआ।

(१८) जनल आफ् दी रायल एशियाटिक सोसाइटी (लदन मार्च १९०६ ई) में प्रकाशित 'हिस्टारिकल इन्क्वायरी कन्सर्निङ्ग दी ओरिजिन एण्ड डेवेलपमेंट आफ् सूफिज्म' उनका वह निबन्ध जिसमें उन्होंने सूफीमत के स्वरूप उसके आरम्भ एव क्रमिक विकास आदि के विषय में बड़ी विद्वता के साथ लिखा है।

प्रोफेसर निकोल्सन के प्रिय शिष्य एव मित्र डा० आर्थर ज आर्बेरी ने, उनके उक्त निबन्ध के आधार पर टीका टिप्पणी करते हुए बतलाया है कि सूफीमत के आरम्भ एव क्रमिक विकास के विषय में उनकी धारणा का साराश नव विभिन्न तथ्यों पर आश्रित माना जा सकता है। इनमें से सर्व प्रथम यह है कि सूफीमत का, अपरोक्षानुभूतिवाद एव मौनवादी के रूप में, उन उपास प्रधान प्रवृत्तियों से ही स्वाभाविक विकास हुआ था जो उम्मयद शासकों के समय में, इस्लाम के भीतर दीख पड़ी थी। इसी प्रकार, दूसरा यह कि यद्यपि उसे हम ईसाई धर्म द्वारा प्रभावित कह सकते हैं, फिर भी वह वस्तुत इस्लाम की ही देन था। तीसरी बात यह है कि हिज्री सन् की दूसरी शताब्दी के अन्त तक सूफीमत के अन्तर्गत एक नवीन विचारधारा का प्रचार होने लगा जिसका सम्बन्ध मारूफ अल् करखी के प्रवचनों के साथ रहा, किन्तु जिसका स्वरूप इस्लाम के विपरीत एव अज्ञात पूरक भी कहला सकता था। फिर हिज्री सन् की तीसरी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही ऐसे विचार बहुत कुछ निश्चित हो चले तथा सूफीमत के निश्चित अग तक बन गये। फिर यह भी कि जिस व्यक्ति ने इन मान्यताओं

को स्थायी रूप देने में सबसे अधिक भाग लिया वह मिस्र का सूफ़ी ज़ू अल्-नून था। इस सम्बन्ध में छठी बात यह कही जा सकती है कि जिस ऐतिहासिक वातावरण के भीतर इस मत का आरम्भ हुआ वह ग्रीक दर्शन द्वारा अनुप्राणित रहा और इसको नव अफलातूनवाद एवं नास्तिकवाद द्वारा प्रेरणा प्राप्त करना भी अवश्य स्वीकार किया जा सकता है। अतएव, उनका आठवां तर्क है कि सूफ़ीमत के, प्रमज्ञान वाले अंश के मूलतः ग्रीक होने के कारण, ये उत्कट सर्वात्मवादी विचार जिन्हें पहले पहल अबू यज़ीद (बायज़ीद) अल् बिस्तामी ने प्रश्रय दिया था, मानो प्राच्य देश के अथवा भारत के सिद्ध होते हैं और 'फ़ना' सम्बन्धी विचार बौद्ध निर्वाण से प्रभावित बन जाता है। उनका फिर अन्त में यह भी कहना है कि तीसरी हिज्री शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सूफ़ीमत का एक संगठित सम्प्रदाय भी तैयार हो गया जिसके उपदेशक, साधक तथा अनुशासक के नियम अपने बन गये तथा यह प्रदर्शित करने के प्रयत्न आरम्भ हो गए कि यह मत 'क़ुरआन' और हदीस पर आधारित है और इस प्रकार इसे इस्लाम के विपरीत नहीं कहा जा सकता[1]।

प्रोफेसर निकोल्सन के उपर्युक्त मत से कदाचित् सभी सहमत न हों और स्वयं उन्होंने भी अन्त में इसे कुछ मात्रा में परिवर्तित कर दिया था। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि उनका निकाला गया परिणाम यथेष्ट अध्यवसाय, एवं चिन्तन के अनन्तर निश्चित किया गया था और इसका अपना महत्व है।

१—प्रोफेसर आर्थर ज० आरबरी 'ऐन इन्ट्रोडक्शन टू दि हिस्ट्री आफ् सूफ़ीज़्म' (लंदन १९४२) पृ० ४७-५।

नामानुक्रम